DAMAGE BOOK

Text Dark And Light Within The Book Only

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182371
UNIVERSAL LIBRARY

जिन्दगी के गीत

लेखक—

रामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

मन्नन साहित्य परिषद् गोरखपुर।

प्रकाशक—

मन्नन साहित्य परिषद्

हालसीगंज, गोरखपुर।

संवत २०१४] [मूल्य १।।।=)

प्रकाशक—
मन्नन साहित्य परिषद्
हालसीगंज, गोरखपुर।

[प्रथम संस्करण १०००]

मुद्रक—
मारकण्डेय प्रसाद
जनता प्रेस,

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
१—जिन्दगी	१
२—गड्ढा और टीला	३
३—रेल	७
४—माझी	१०
५—राही	१२
६—हँसना	१५
७—दियासलाई की खाली डिबिया	१७
८—नई जिन्दगी	१९
९—कवि से	२१
१०—पगडंडी	२४
११—घंटाघर	२७
१२—कलाकार से	३०
१३—नई आवाज	३२
१४—जागरण-गीत	३५
१५—श्रमदान	३७
१६—आज का दिन	३९
१७—छब्बीस जनवरी	४१
१८—ताल का पानी	४३
१९—अंतर्वासी से	४५
२०—दो तिनके	४७
२१—बापू !	४९
२२—सरिता	५२
२३—शरणार्थी बालक	५३
२४—महल	५५
२५—पानी की पुकार	५८
२६—पंछी	६२
२७—शान्ति का प्रतीक	६७

२९—पपीहा ७१
३०—पं० नेहरू के प्रति ७३
३१—उपेक्षिता ७४
३२—दो किनारे ८०
३३—प्रकृति-पुरी ८१
३४—अनुरोध ८४
३५—विदा की वेला ८५
३६—गीत ८६

प्राक्कथन

मेरा विश्वास है कि इस ग्रन्थ में संकलित, कवि 'जीवन' की नवीनतम रचनायें साहित्य-रसिकों को अत्यन्त रुचिकर प्रतीत होंगी। ग्रन्थ का नाम भी अत्यन्त सार्थक है। कविताओं के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि कवि के मन में जीवन के प्रति अदम्य उत्साह है और जीवन के मूल्यों में उसकी आस्था है। कहीं भी कोरी भावुकता देखने को नहीं मिलेगी। रंगीनियत अथवा शृंगारिकता का पूर्ण अभाव है। क्योंकि जीवन के संघर्ष में ये उपकरण अंततोगत्वा अवास्तविक सिद्ध होते हैं। जीवन का यथार्थ सत्य तो कठिनाइयों से होड़ लेना और उन पर विजय प्राप्त करने के लिए कर्तव्य में निरन्तर संलग्न रहना है। जीवन जी की कविताओं का यही अर्थ है और उनसे यही ध्वनि निकलती है। इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि कलात्मक वैशिष्ट्य का अभाव है। शब्दों के चयन और गुम्फन में कवि ने पर्याप्त सुरुचि का परिचय दिया है। छंद योजना एवम् सम्पूर्ण रचना विधान में सौष्ठव है। किन्तु इन कविताओं में केवल गहरी चमक दमक नहीं है वरन् जीवन के ठोस अनुभवों का सन्निवेश हुआ है। उत्तम काव्य वही है जिसके परिवेश में सम्पूर्ण जीवन आ जाता है। जो काव्य जीवन की किसी एक चेष्टा या किसी एक व्यापार को लेकर लिखा जाता है वह ऊँचे आदर्श को नहीं छू पाता। इस दृष्टि से देखने पर इस ग्रन्थ में संग्रहीत कृतियाँ सचमुच अच्छी लगेंगी।

जीवन जी की तीन चार पुस्तकें इसके पहले प्रकाशित हो चुकी हैं और उनकी रचना क्रम के अनुसार देखने से पता लगता है कि जीवन जी की काव्य प्रतिभा का कितना विकास हुआ है। आरम्भिक रचनाओं में प्रकृति प्रेम और देश भक्ति की भावना व्यक्त हुई है। तदुपरान्त कवि का झुकाव गीत काव्य की ओर हुआ। इधर कुछ वर्षों की उनकी प्रौढ़ रचनाओं में जीवन के प्रति विश्वास और उत्साह की अभिव्यक्ति हुई है। हम कह सकते हैं कि कवि ने अपना एक जीवन दर्शन प्राप्त कर लिया है। आशा है जीवन जी अभी और बहुत कुछ लिखेंगे और उनकी भविष्य की कवितायें और भी सुन्दर होंगी। किन्तु अब तक जो काव्य प्रणयन उन्होंने किया है उसके आधार पर हमें मानना पड़ेगा कि वे यश और ख्याति के अधिकारी हैं।

अध्यक्ष—हिंदी विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर (म० प्र०)

नन्ददुलारे वाजपेयी

अपनी बात

परिस्थितियों के संकीर्ण दायरे में बन्द, भावना की स्वर-लहरी वर्षों के बाद "जिन्दगी के गीत" में मुखर हुई है। इस बीच जीवन में कितने चढ़ाव, और उतार आये। विगत के अनुभवों ने सही और साफ तौर से साबित कर दिया कि जिन्दगी संघर्षों के बीच से चलकर ही अपनी मंजिल पर पहुँचने का दावा कर सकती है।

प्रस्तुत संकलन की रचनायें मेरे उद्देश्य की पूर्ति में कहाँ तक सफल हुई हैं, इसका निर्णय अपने पाठकों पर ही छोड़ देना सही समझता हूँ।

इस संग्रह के प्रकाशन में बाबू परमेश्वरीदयाल जी का संपूर्ण श्रेय है। उन्होंने पुस्तक-प्रकाशन का पूरा व्यय स्वीकार कर जिस सहृदयता एवं उदारता का परिचय दिया है, वह उनके जैसे धनीमानी सज्जनों के लिये अनुकरणीय है। अपनी हजारों रुपये मासिक आय का, काफी मात्रा में सदुपयोग उनकी विशेषता है। बहुत से छात्र आप की छात्र-वृत्ति से आगे बढ़ने का प्रोत्साहन पाते रहते हैं।

सन्तोष की बात है आप के सुयोग्य उत्तराधिकारी श्री ज्ञानेन्द्र नाथ श्रीवास्तव में अपने आदरणीय पिता के सभी गुण पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

सागर विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के अध्यक्ष आचार्य पं० नन्द दुलारे जी वाजपेयी का आभार धन्यवादों से नहीं चुकाया जा सकता। उन्होंने जिस सहृदयता से प्राक्कथन लिखकर पुस्तक का गौरव बढ़ाया है, वह उनके जैसे विद्वान के लिये शोभा की वस्तु है। डाक्टर राम अवध द्विवेदी को धन्यवाद देना एक शिष्टाचार की बात होगी; मुझे उन्हीं के परिवार से कविता की देन मिली है। अतः उनके सम्बन्ध में आभार-प्रदर्शन बनावटी बात होगी।

अपने हर क्षेत्र में सदा के सहायक और सहयोगी डाक्टर शिवरतन लाल को कैसे भुलाया जा सकता है। यह बात सर्वथा असम्भव है।

और जिन मित्रों ने पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग दिया है उन्हें धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य मानता हूँ।

ठठेरी बाजार बनारस के प्रसिद्ध सेठ गोरखपुर वाले बाबू हीरालाल का जो सराहनीय सहयोग मिला है उसके लिये शुभ कामना प्रगट करता हूँ।

अंत में अपने उन कवि मित्रों को, जिनका सहयोग और साहचर्य्य मेरे अब तक के काव्य-जीवन में रहा है और है, बधाई देता हूँ।

रामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

जिन्दगी के गीत

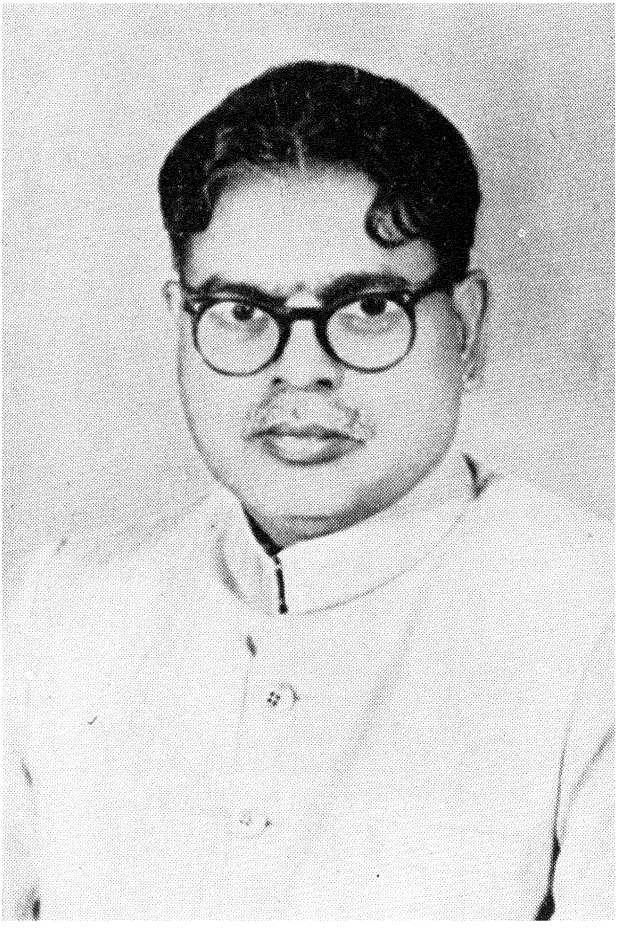

श्री परमेश्वरी दयाल मुख्तार गोरखपुर ।

समर्पण

जिन्दगी, जिसमें कि आगत, वर्तमान-अतीत।
जिन्दगी, जो हार को पल में बनाती जीत।
तुम उदीय उदार, मेरे मञ्जु मन के मीत।
लो, समर्पित कर रहा मैं 'जिन्दगी के गीत'।

'जीवन'

जिन्दगी

क्यों किसी की चार दिन की जिन्दगी, क्यों किसी की जिन्दगी लाचार है ?
जब कि हर परमाणु में, हरदम यहाँ, जिन्दगी है, जिन्दगी का प्यार है।
फूल में है जिन्दगी का जागरण
धूल, उसकी एक झरकी, प्यार की थपकी भरी सी नींद है।
नींद, कब तक नींद ही रह जायगी, कब किसे इस बात की उम्मीद है ?
जिन्दगी, वह गीत—जिसमें मौत, सरगम सी सिमट कर रह गयी है।
और, जिसकी लहरियों में लीन होकर
मौन सी गति-हीन होकर एक अनजानी दिशा को बह गयी है।
जिन्दगी की कुछ कहानी कह गयी है।

जिन्दगी, बुदबुद, कि सिन्धु समान ?
उठ रहा जिसमें निरन्तर ज्वार का जय-गान।
जिन्दगी सपना ? नहीं, चिर सत्य
सत्य भी वह, जो सदा साकार।
और, वह साकारता, जो इस धरा को
उर्वरा करती हुई, भरती हुई मधु प्यार
बन गयी है जिन्दगी की एक अविरल धार।

जिन्दगी की वीन का यह तार,
उसकी मधु मयी झनूकार के रंगीन रव, पावन प्रणव से
गूंजता आया, रहेगा गूंजता संसार।

रम्य रंगीनी भरी, जब जिन्दगी के भाव से भीनी-भरी
बिखरी उषा की मधुमयी निखरी नयी मुस्कान।
ओस के उस सिसकते समुदाय में भी
आयु की घटती हुई सी आय में भी
आ गयी तब जान, जागे जागरण के गान।
घन तिमिर के अन्ध पट पर खिच उठा
जीवन सुधा से सिंच उठा जब नवल धवल विहान।

सृष्टि के उस आदि में जब जिन्दगी जागी, जगा भूभाग।
और, तब अनगिन स्वरों में मूर्च्छना, गति-मीड़ भर कर।
नीड़ में उस निजनता की भावना की भीड़ भरकर।
मौन मनु के चिर विकुंठित कंठ से फूटा सृजन का राग।

जिन्दगी की एक लघु हिलकोर
जब उठी तो, हिल गया धरती गगनका छोर।
गल-पिघल कर एक पल में,
मोम की जैसी शकल में
पत्थरों की पाँत पानी बन गयी।
फिर लिपट कर जिन्दगी के पाँव में
खुद-बखुद मंजिल रवानी बन गयी।

हर दिशा, हर मोड़ पर, हर ठाँव में,
और, छुपकर जिन्दगी की छाँव में
सृष्टि का क्रम पल रहा, पलता रहेगा।
सोचकर विपरीत इसके और इससे दूर मानव
मौत से मजबूर चिन्तित-चूर मानव
छल रहा है, स्वयं को छलता रहेगा।
जिन्दगी का कारवाँ चलता रहेगा॥

गड्ढा और टीला—

मैं आफत का मारा, किस्मत की मजबूरी,
मैं दबी हुई सी आग, बँधा सा पानी हूँ।
मैं खोया सा अर्मान, गान नीरवता का,
मैं आँसू में डूबी सी मौन कहानी हूँ।

मैं अन्तर का प्रतिशोध, बोध अपने पन का,
मैं उठता हुआ विरोध, संधि की लाचारी।
मैं अटल सत्य की साख, लाख से लीख बना,
मैं मानी मन का माख, राख की चिनगारी।

मैं भूली सी पहचान बेवसी की उलझन,
वह प्राण, कि जो सुख-नींद न पल भर सोता है।
मैं वह राही, गुमराह दूर जो मंजिल से
जीवन का दुर्गम भार जनम भर ढोता है।

मैं लुटी हुई सी आस आसरा टूटा सा,
मैं घुटी हुई सी साँस छुटी हर ओरों से।
मैं भग्न वीन का तार हार की हैरानी,
मैं लौटी हुई पुकार क्षितिज के छोरों से।

मेरी रोती सी रात, तुम्हारा प्रात मधुर,
मेरा तप, मेरा त्याग तुम्हारा संचय है।
उगने में केवल एक तुम्हारे अंकुर के,
मेरे जीवन के उपवन का होता लय है।

मेरा पतझर अपना सब कुछ बलिदान करे,
मधु मुस्काता है किन्तु, तुम्हारी डाली पर।
है टेक यहीं, अभिषेक तुम्हारा होता है,
मेरे जीवन पर, और लहू की लाली पर।

मेरे आँसू से हास तुम्हारा सजता है,
मैं मरता हूँ तो तुम्हें जिन्दगी मिलती है।
जब जलता मेरा जेठ, तुम्हारे आँगन में
सावन की रिमझिम राग-भरी सी खिलती है।

मेरी ही बाती, मेरे तन का तेल, मगर
हर रोज तुम्हारे घर में दीपक जलता है।
क्या किया विधाता ने यह कैसा खेल अरे,
मैं समझ न पाता कौन छलावा छलता है।
मैं एक एक स्वर की कड़ियों को जोड़ूँ, पर
बन जाता जैसे गान तुम्हारे तारों का।
मैं लिये अँधेरा आज अमा की रजनी का,
तुम पर प्रकाश पूनम के चाँद-सितारों का!

मेरे शोषण में सदा तुम्हारा पोषण है,
मेरे वैभव से भाल तुम्हारा ऊँचा है।
मेरे मन की यह बात न शायद तुम मानो,
साँची इसका फिर भी संसार समूचा है।

उस दिन आयी क्या तनिक तुम्हारे कानों में—
युग की पुकार, वर्षा के मौन इशारों से।
तुमने कर दी अनसुनी, सुनी कुछ बात नहीं,
गूँजा स्वर जो मद-भरी हवा के नारों से।

तुम नहीं देखते रोज सुबह की वेला में
अन्यायी तम का शीश उतारा जाता है।
उस लाल लहू की लाली की लहरों से ही
शृंगार उषा का सदा सँवारा जाता है।

वह शान-धरी किरनों की तेज कटारी से
अवसाद—भरी तंद्रा की बेड़ी कटती है
आँखों के सर में, और अमर में लाखों के
खिलता प्रकाश का कंज, और पौ फटती है।

जब राज तंत्र का जोर जहाँ मद-भोर हुआ,
विपरीत जमाने के मनमानी होती है।
तब, जुटी सितारों की जनता के हाथों से
पश्चिम में सूरज की कुर्बानी होती है।

वह बादल, जो दिन रात गगन के आँगन में
आँखों में आँसू भरे सिसकता रोता है।
मालूम तुम्हें है, वही कि दिल की तड़पन में
बिजली की विप्लव-शक्ति सदैव सँजोता है।

गिर कर भी सौ सौ बार सदा उठने वाला,
सागर का हाहाकार ज्वार पर चलता है।
शीतल जल के तल में ही ज्वाला मुखियों की
ज्वालाओं का विस्फोट प्रलय सा पलता है।

यह बँधी हवा की विकट बवंडर आँधी सा,
खामोशी का उद्घोष भयानक होता है।
शोषित, उत्पीड़ित और प्रताड़ित प्राणों में
उठता सा उन्मद रोष भयानक होता है।

मैं नहीं चाहता, कहीं कि ऐसे दिन आयें।
हम दोनों में जब घिरा द्वन्द का घेरा हो।
निर्माण हमारा और तुम्हारा रुक जाये
विध्वंस बसे, विप्लव का वास—बसेरा हो।

मैं नहीं चाहता, नाश कि पशुता का फैले,
हो नाश युगों से चालित भाईचारे का।
मैं नहीं चाहता कहीं हृदय की हत्या हो,
बन जाये विश्व प्रतीक ठीक हत्यारे का।

हैं घाटों—घाटों का बाट एक ही ठाट बाट,
हैं बाट बहुत से, किन्तु एक ही घाटी के।
हैं एक आग, आकाश, हवा जीवन सब में,
हम सब पुतले हैं बने एक ही माटी के।

तो फिर यह कैसी बात कि हम तुम दोनों में
यह ऊँच नीच का भरा भयानक भाव रहे।
जो मिली सनातन से समता है संसृति को
उसमें दुविधा दीखे, दयनीय दुराव रहे।

मेरा मन कहता है कि हृदय—परिवर्तन हो,
निर्दयता का यह मलिन मत्सरी मन बदले।
सुख और शान्ति की शक्लों में हल्दीघाटी
यह कुरुक्षेत्र, यह तेरा पानीपत बदले।

यह भी सच है, यदि कहीं न ऐसा हो पाया,
तुम गये जहाँ से नये नजारे देखोगे।
धरती यह हरी तपे तवा सा, अंबर में
अंगारे जैसे चाँद सितारे देखोगे।

तुम देखोगे सामने तुम्हारी आँखों के!
खलता की खेती हरी तुम्हारी डूबेगी।
आ रही बिप्लवी बाढ़, कि जिसकी धारा में
कोरे कागज की तरी तुम्हारी डूबेगी।

उस इन्कलाब के जादू से मंतर से ही,
अन्तर अन्तर में एक लहर सी आयेगी।
जो जहर—भरी सी तुम्हें, तुम्हारे जीवन को
कर देगी मटियामेट कहर सा ढायेगी।

मैं सच कहता हूँ बात, रात का दिन होगा,
कोई ऐसी करतूत निराली कर देगा।
आ रहा फावड़ा लिये समय का वह किसान
जो तुझे काट कर, मुझे पाट कर भर देगा॥

रेल

रेल ! चलना और जलना खेल !
मेरी जिन्दगी का खेल !
आंख का पानी, हृदय की आग का यह राग-रंजित मेल !
जब हुआ तो भर गया तूफान
प्राणों में प्रगति का गान जैसे गा गया कोई।
कि मधु बरसा गया कोई,
नशा सा छा गया कोई,
किसे मालूम है उन्माद यह, कैसे कहां से आ गया कोई ?
आग वह, जिससे कि पानी आग !
आग वह, बचपन, बुढ़ापा, यह जवानी आग !
आग वह, जिससे कि पथ, पीछे निरन्तर
और आगे जा रहा अभियान
राह की संकीर्णता का,
जिन्दगी की जीर्णता का भी न मुझको ध्यान।
किन्तु, चलने और जलने का अपरिमित रह गया अर्मान
साथ मेरे चल रहा मादक मिलन का मोह !
आहत आह, विकल विछोह,
पागल प्यार, आकुल आंसुओं की धार
अनगिन जीत अनगिन हार।
देश और विदेश मुझ में,
प्यार के सन्देश मुझ में।
नद, नदी-नाले वनों को पार करती,
चावसे चढ़ती उतरती
मैं चली गति में नवीन प्रयाण भरती।
रोक मत सिग्नल, कि रुकने की न मुझको चाह।
दूर मंजिल, और मुझसे दूर मेरी राह।
आ रहा गति का बवंडर झुक अरे ! अनजान !
तन मत, रुक अरे ! अनजान !
गति को रोक सकता कौन ?

बोल अम्बर मौन, धरती मौन !
गति को रोक सकता कौन ?
गति के पांव में पाताल, ऊपर व्योम,
सूरज-सोम पग की छाप ।
रज-कन से भिनारे अतुल और अमाप ।
और, सरितायें, प्रगति के चल चरण की लीक,
पावन पवन पुरुष-प्रतीक ।

लाल झण्डी—एक लाल निशान !
खतरे का नग्न संकेत, रग में रेत,
राह में अवरोध !
एक उन्मद भावना को ज्ञान का यह बोध !
ज्ञान, गति के पांव की जंजीर,
वह तर्कश, कि जो मुंह बंद,
जिसमें अमित अंतर्द्वन्द,
जिसमें कसमसा कर सिसकते निस्पाय तीखे तीर,
जैसे बंधा सर का नीर ।

और, खतरा ! खतरा जिन्दगी का नाम !
दिन हो रात, चाहे भोर, चाहे शाम,
खतरा जिन्दगी का नाम !
क्या मजा ? यदि नाव लहरों से न खेले,
झूम कर झोंके तरंगों के न झेले,
कूल पर क्या, जो मजा मझधार में है,
रंग पतझड़ का तनिक भी मिल सका न बहार में है,
जिन्दगी तो मौत के शृङ्गार से निखरी निरंतर !
ज्योति तम के पार से निखरी निरंतर ।

तार खतरे के उठे झन्कार, गूंजा गान,
ठीक वैसे ही, कि जैसे बादलों के बीच
बिजली की मधुर मुस्कान ।
भय मुझे क्या ? जब कि मेरा गाइड मेरे साथ
उससे मैं सदैव सनाथ,
उसकी चाह मेरी राह,
तो फिर क्यों करेगा वह मुझे गुमराह

लो, बजी सीटी, सजग! हुशियार!
राही, तुम न जाना चूक!
यह अजगना भर न दे हिय में तुम्हारे हूक।
जाँच होगी, जाँच!
देखना, ईमान पर आने न पावे आँच।

यह खड़ी नत-प्राण प्रेम विभोर!
देखती अपलक दृगों से मौन मेरी ओर
मैं निरुपाय, उसका प्यार
काश! उसकी भावना का राग-मय संसार,
हो पाता मुझे स्वीकार।
प्यार तो कर्तव्य का साधक सदा अविराम।
प्यार सच्ची साधना, आराधना का नाम।

मैं चली जाना मुझे है दूर।
क्योंकि चलने के लिये यह जिन्दगी मजबूर।
चलना जिन्दगी का नाम!
जलना जिन्दगी का काम।
रंजित राग जिन्दाबाद!
पानी आग जिन्दाबाद!
गति के गान जिन्दाबाद!
यह अभियान जिन्दाबाद!!

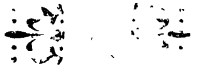

माझी

मैं न जाना चाहता उस पार माझी रे!
आज तो मैं, और यह मझधार माझी रे!

देख मत तूफानका दुर्दम्भ—
गति के गानका, अभियानका आरम्भ।
दूर धर दे पाल, बल्ली-बांस अब न सम्हाल
तोड़ लंगर छोड़ दे पतवार माझी रे!
आज तो मैं, और यह मझधार माझी रे!
मानता हूँ आज आँखों में भरी संघात!
मानता हूँ, यह रहा है वात विप्लव-वात।
हो रहा हर ओर घन का घोर गर्जन आज।
चाहता है व्योम वज्रों का विसर्जन आज।
यह प्रलय-उत्पात! आंधी, यह कुअंधी रात!
पर करूं क्या समझ में आती नहीं कुछ बात।
चल रहा तूफान अन्तर में निरंतर
पल रहा है एक हाहाकार माझी रे!
आज तो मैं और यह मझधार माझी रे।

आज तो इस पार का, उस पार का
यह मोह, मन से खो गया है
आज भावोंका विकट विद्रोह जैसे हो गया है।
खेलना है जब हमें खुलकर प्रलय के खेल,
तो फिर कूल से क्या मेल?
कूल तो है एक मन की भूल!
डोर में जिसकी बंधा पौरुष रहा है झूल।
जिन्दगी की जीर्ण जर्जर नाव।
चल पड़ी संघर्ष के भर भाव।
देख, तू तट से तमाशा देख।
शक्ति, साहस और आशा देख।
आज लहरों का निमंत्रण और उनका प्यार
प्राण प्रण से है मुझे स्वीकार माझी रे!
आज तो मैं और यह मझधार माझी रे!

वह उठी ऊपर कि अब आकाश छूती है,
नाव है यह या कि कोई देव-दूती है ?
वह गिरी, पाताल को भी पार करने को,
शेष के फण का सहज शृङ्गार करने को,
बीच में जल जाल के तल पर रुकी जैसे,
नर्तकी सी नाच कर झूमी झुकी जैसे
सिन्धु के इस दीप में वह एक बाती सी।
आज जलकर ज्योति जीवन की जगाती सी।
बढ़ चली तूफान गतिके गान गाती सी।
मौत पर भी जिन्दगी के पथ बनाती सी।
चाह से चट्टान को भी चूर करती सी।
मोड़ती सी धार को मजबूर करती सी,
भंवरियों को चीर कर वह तीर सी निकली,
बाँधती लघु लहर की जंजीर सी निकली।
प्यार-मय संघर्ष का संसार माझी रे !
बोल, किसकी जीत, किसकी हार माझी रे !

राही

मैं राही हूँ, चलना हो मेरा जीवन
चलता हूँ तो तूफान लिये चलता हूँ।

मेरे पैरों में बिजली खेला करती,
अंतर से आशा अमृत उँडेला करती;
करतूत भरी वह, मेरे इन हाथों में;
पतझड़ को भी जो मधु की वेला करती,
मौत ही जिन्दगी बन जाती मेरी है,
जिन्दगी, मौत की भी अवहेला करती,
आँखों में मंजिल, मौन मधुर कंठों में
विप्लव का व्याकुल गान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो, तूफान लिये चलता हूँ।

चलने की आयी चाह, चला निर्झर सा,
मस्ती में बेपरवाह चला निर्झर सा,
हौसले मिटे मन के कब? कोई बोले;
कब हीन हुआ उत्साह, चला निर्झर सा,
है नक्श पहाड़ों के दिल पर भी ठोकर
रोड़ों ने रोकी राह चला निर्झर सा,
मुझको स्वागत स्वीकार सदा शूलों का
फूलों को मैं मुस्कान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो, तूफान लिये चलता हूँ।

मैं राही दुर्गम पथ का चलने वाला,
परवाना सा हँस हँस कर जलने वाला,
मेरे साथी हैं आँधी, पानी-पत्थर,
मैं पागल पीड़ाओं में पलने वाला,
मैं शीत शिशिर की साँसें भी लेता हूँ,
अवसर आया तो आग उगलने वाला।
मैं सुनता हूँ ललकार लालसाओं की
बाधाओं का आह्वान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो, तूफान लिये चलता हूँ।

मुझसे गति भी रंगीन रवानी पाती,
मुश्किलें, मुझी से हैं आसानी पातीं,
शैशव की तो क्या बात, जरा भी मुझसे
मदहोश, भरी पुरजोश जवानी पाती,
मुँह खोले सी कंकड़ियों का मैं बादल,
युग-युग की प्यासी घड़ियों का मैं बादल,
मैं बादल हूँ मरु का मासायें जिससे
चिर प्यास बुझाती जो भर पानी पाती,
मैंने जगती को जीवनदान दिया है,
जीवन का एक विधान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो तूफान लिये चलता हूँ।

मेरी गति में इतिहास उतर आता है,
मेरी गति पर विश्वास उतर आता है,
मेरी गति से ही सभ्य समस्त सृजन के
संगीतों का आभास उतर आता है
मैं ही हूँ, जिससे चाँद, सितारों वाला
धरती पर वह आकाश उतर आता है
सौ सौ साधों से सधे हुए जीने से
मरने का मैं अर्मान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो तूफान लिये चलता हूँ।

अंबर में घन की घोर घटायें घिरतीं,
जब कड़क-कड़क कर क्रूर बिजलियाँ गिरतीं
मुँह बाये सी विपदायें, दायें बायें,
हर ओर झूमतीं घोर घूमतीं फिरतीं
जब मनोवृत्तियाँ ऊबी सी, डूबी सी
अपने में अपने आप तैरतीं तिरतीं
सुनसान तिमिर की रातों में, बातों में
हँसता सा स्वर्ण-विहान लिये चलता हूँ।
चलता हूँ तो तूफान लिये चलता हूँ।

करती ही मजबूर रहेगी किस्मत की मजबूरी कब तक ?
सिमट न पायेगी मानव से मानवता की दूरी कब तक ?
वह इन्सान ! कि जिसके आगे अमरों ने भी हाथ पसारे !
जिसकी कृतियों की संख्या में चमक रहे अंबर के तारे।
वह इन्सान ! कि जिसने उस दिन पानी पर था पिंड सँवारा
जिसकी एक बूँद के बल से बँधी प्रलय की प्लावित धारा।
कब तक वह इन्सान, श्वान की मौत मरेगा ?
कब तक जीते जी कब्रों के पेट भरेगा ?
यह घंटाघर, समय सूचना का क्रम इसमें।
मिट जाता है एक—एक पल का भ्रम इसमें।
किन्तु, इसे, उस नये समय का मिला अभी आभास नहीं क्या ?
नयी हवा लहराती आयी अब तक इसके पास नहीं क्या ?
नई हवा, जो इन्कलाब के नारे देती।
दिल को देती आग, दृगों को शोले और शरारे देती।
भर देती तूफान उमंगों में, हलचल में
कर देती जिन्दगी, जिन्दगी को जो पल में
इस धरती को आसमान के सूरज, चाँद-सितारे देती।

× × × ×

रे घंटाघर, बोल ! कि बारह बजा, समय को मिली जवानी।
वह जुनून, यह जोश, आज मदहोश खून में खिली जवानी।
आयेगा तूफान प्रलय का जहाँ तनिक भी हिली जवानी।
युग का गायक नये स्वरों में नये गीत गाने वाला है।
जुल्मों के जग में अंगारे बादल बरसाने वाला है।
इस पतझड़ के पात—पात पर मधु का रथ आने वाला है।
कोटि—कोटि जीवित मुर्दों का मरघट मुस्काने वाला है॥

हँसना

मैं हँसता हूँ इसलिये, कि हँसना, जीना है।
सूरज हँसता, हँसता है चाँद सलोना भी
हँस देता जिससे जग का कोना-कोना भी।
आँसू में डूबा बादल भी है याद मुझे,
जिसके हँसने में जादू भी है, टोना भी।
सौ-सौ शूलों से घिरे हुए फूलों से
हँसने का कब अधिकार किसी ने छीना है?
मैं हँसता हूँ इसलिये कि हँसना जीना है।

मधु का मुस्काना था, कि मिली मोहक माया
वह हरी-भरी मनभायी पतझर की काया।
तन, मन-जीवन का ताप आपही आप गया;
मिल गयी जहां जब जिसे हंसी को मधु छाया।
वरदान हुए हावी अनगिन अभिशापों पर,
जिसके प्राणों में प्यार हास का भीना है।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है।

मधु में मिठास, मरु में मधु रस की धारा सा,
हारा जो मन से, उसे सशक्त सहारा सा।
आंखों में जिसकी राह और मंजिल डूबी,
उस राही को संकेत भरा ध्रुवतारा सा।
परिणाम किसी के हंसने का ही चाँद हुआ,
अंबर में जो अभिनव अभिराम नगीना है।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है।

रजनी रोती रह गयी रंज में चार पहर,
उसके आँसू तृण पात-पात पर गये ठहर।
कुछ ऐसा जादू हुआ, पड़ी उनपर जैसे
मधुमयी उषा की मुस्कानों की एक लहर।
वे आँसू मोती बने, और अब तो उनपर
आवरण हास का छाया झीना झीना है।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है

कुछ आफत आयी, सिसक सिसक सिर धुनते हैं ।
सुख के ताने में दुखके बाने बुनते हैं ।
हम निर्झर का सन्देश रात दिन सुनते हैं;
फिर भी जाने क्यों राह रुदन की चुनते हैं ?
जिन्दगी, जिन्दगी रह न सकी, सहसो आँखें
नत झुका हुआ माथा है, सिकुड़ा सीना है ।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है ।

जिनकी मस्ती मर रही कि जिनकी आहों में
कसकों में काया, प्राण विलीन कराहों में ।
रह सके नहीं अपने, विश्वासों के सपने,
तिल भी पहाड़ सा खड़ा कि जिनकी राहों में ।
रह गये रंक के रंक, कि जिनकी गाँठों में
हँसने का पैसा नहीं, जिन्दगी सीना है ।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है ।

तुम हँसो, धरा अंबर तक ठीक ठहाका हो ।
तुम हँसो, हँसी से घिरा कि नाका-नाका हो ।
तुम हँसो, मुखर हो उठें तुम्हारे सुख के स्वर,
तुम हँसो, लोक की अमा रजत की राका हो ।
तुम हँसो, वेग से बहे हास के सागर में
वह रुदन-रेत पर जिसका पड़ा सफीना है ।
मैं हँसता हूँ, इसलिये कि हँसना जीना है ।

ओ दुनिया के गम गान, दुखी, रोने वालो !
अपनी संचित निधि आप स्वयं खोने वालो !
तुम आँखें खोलो, और तनिक सम्हलो, सोचो
क्या हुए, और अब आगे क्या होने वालो !
अपने प्याले लो उठा, प्रकृति है ढाल रही ।
यदि तुम्हें हँसी की सुधा खुशी से पीना है ।
मैं हँसता हूँ इसलिये कि हँसना जीना है ।

दियासलाई की खाली डिबिया

उफ़ ! मेरा अन्तर आज आग से खाली है ।

जाने, कब कैसे छुटी अजाने लुटी कहां,
खोई मैंने किस तौर संजोई लाली है ।
क्या जादू मन्तर किया समय के अन्तर ने,
उफ़ ! मेरा अन्तर आज आग से खाली है ।
वह राग, कि जिससे दीवाली को रूप मिला,
जिसने रजनी को नई विभा का हास दिया ।
जिसने भर दी झन्कार तिमिर के पायल में,
रस और लास रंगीन रुपहला रास दिया ।
मिल गये धूल में फूल वहीं प्रतिकूल हवा
वह दीन कथा कह रही मौन शेफाली है,
उफ़ ! मेरा अन्तर आज आग से खाली है ।

मेरा स्वर सहसा गूंज गया गायन बन कर,
मुझ से जो खिंची लकीर तुरत तस्वीर बनी ।
झनकार छा गया वहीं दहकते शोलों का ।
चिनगारी मेरी ज्वालामुखी अधीर बनी ।
चुन गयी किरन के एक तनिक से धागे में
वह जगर-मगर से भरी ज्योति की जाली है ।

उफ़ ! मेरा अन्तर आज आग से खाली है ।
जब लोग लिये फिरते थे हाथों हाथ मुझे !
है याद अभी जब जेब-जेब में पलता था ।
मैंने खोयी क्यों स्वतः स्वतः क्या है मेरा,
क्या पता मुझे मैं क्यों फरेब में पलती थी ।
जांचे क्यों कोई छली नियति किस सांचे में,
किस लिये जमाने ने यह रीत निकाली है ।
उफ़ ! मेरा अन्तर आज आग से खाली है ।

जिन हाथों में मैं पली उन्हीं की मर्जी है,
खुदगर्जी का यह एक तमाशा देखो तो।
कोई भी चाहे, और उठाये फिर मुझको,
यह मरी हुई भी मेरी आशा देखो तो।
मेरे मन की यह चाह युगों से सोच रही,
किसने अपनी गति-नीति सदैव सम्हाली है।
उफ्! मेरा अन्तर आज आग से खाली है।

जो भरा पुरा कल रहा विश्व की आंखों में
इस तौर उसी का प्याला पल में रीता है।
मैं पड़ी राह के क्षीण छोर पर यों मानो,
व्याकुल अशोक वन-बीच बिलखती सीता है।
कब चली, रुकी, कब झुकी, उठी, कब गिरी कहां?
यह निर्मी निराली दुनिया चक्कर वाली है।
उफ्! मेरा अन्तर आज आग से खाली है।

वह जीवन क्या? जिसमें न रंग हो, राग न हो।
जिसके चावों में भावों का भू-भाग न हो।
जिसमें दीवाली और दशहरा—फाग न हो,
वह जीवन क्या? जिसमें कि जल रही आग न हो।
जिसने न उजाला दिया जगत् के आंगन को
उस जीवन से तो मधुर मौत मतवाली है।
उफ्! मेरा अन्तर आज आग से खाली है।

नई जिन्दगी

नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।
डूब गया जिसमें धरती का, आसमान का छोर भी।

धार, कि जिसकी गति से गति भी हो जाती गतिमान है।
धार, कि जिसमें पत्थर से टकराने का अभिमान है।
नई रवानी, नई जवानी और नया अरमान है।
धार, कि जिसकी लहर-लहर में कहर भरा तूफान है।
मलयानिल की बिहरन जिसमें झंझा की झकझोर भी।
नयी जिन्दगी की धारा में आयी नई हिलोर भी।

आँधी के आगे तिनके की होगी भला बिसात क्या?
सूरज निकला, हुआ सवेरा, ठहर सकेगी रात क्या?
प्राणों पर जो गाजी, उसकी होगी बाजी मात क्या?
हल न हो सकेगी क्यों मुश्किल ऐसी कोई बात क्या?
यदि हम अपने जोश जगायें और लगायें जोर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

तट पर जिसकी तरी रो रही, भरी न जिसमें आन है।
जो सपनों से दूर, पराये—अपनों से अनजान है।
गम की शाम, सुबह मातम की रुदन कि जिसका गान है
जान नहीं है जिसमें वह भी क्या कोई इन्सान है?
दोजख भरता, बंधा बिचरता, जीता मरता ढोर भी।
नयी जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

साक्षी सूरज, सोम-सितारे रोम-रोम है रोष में।
दाग दीनता का है जिसमें आग लगे सन्तोष में।
सावधान! हो अरी विषमते! इस युग-सन्धि-प्रदोष में।
रखी रौद्र की थाती होगी अब करुणा के कोष में।
परिवर्तन की पग-ध्वनियोंका मचा सरापा शोर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नई हिलोर भी।

धधक उठी है अन्तर्ज्वाला शोलों के शृङ्गार से।
हुमक रही शंखों की हुंकृति वीन-वीन के तार से।
उद्घोषित हैं मूक दिशायें युग की मौन पुकार से।
जीत हमारी होड़ ले रही युगों युगों की हार से।
रँगी रात, दिन रंगा रक्त में, रंगी शाम भी भोर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

दृगों दृगों में लाली फैली विप्लव के उन्माद की।
जौहर जागा, जगी जवानी युगों युगों के बाद की।
याद किसे फरयाद किसी की, मनुज की, मनुजत्व की।
आज गरीबों की टोली में गोली उठी जेहाद की।
अन्यायों की चुनी चितायें खुदी जुल्म की गोर भी।
नयी जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

सांस-सांस में बंधा बवंडर पग-पग से भूचाल है
मंजिल स्वयं खिंची आती है गति में गजब कमाल है।
गीत-गीत में गर्जन गूंजा प्रलय दे रहा ताल है।
बांध रही मुट्ठी में मधु को पतझड़ का हर डाल है।
प्राण-प्राण मदहोश हो रहा वेसुध और विभोर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

अब न अभागी रात रह गयी सोया मुर्दा, जाग रे!
मौन रहा, वह मुखर हो उठा हर मरघट का राग रे!
फौव्वारों से फैल रहा है गरम खून का फाग रे!
दिशा-दिशा में लगी दहकने इन्कलाब की आग रे!
पूंजी जलती, जलता पूंजीवादी आदमखोर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।

वर्तमान का रथ चलता है मृत अतीत की लाश पर।
सही सृजन का सिक्का होता निर्दय नियति के नाश पर।
आज शक्ति का, बल का संबल आशा पर, विश्वास पर।
धरती धावा बोल रही है गर्दीले आकाश पर।
बूंद-बूंद में ज्वार सिंधु का जागा चारों ओर भी।
नई जिन्दगी की धारा में आयी नयी हिलोर भी।
डूब गया जिसमें धरती का आसमान का छोर भी।

कवि से

आज, जबकि हो रही चतुर्दिक शंखों की धुत्कार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।
रंगरलियों में रँगी हुई वह वंशीवट की बात।
वह अलसाना, रास रचाना यमुना तट की बात।
कुंजों का वह केलि, कलामय वह पनघट की बात।
भूल! तू भी मन मानले, देख निकट की बात।
किसे रिझाना, किसे मनाना अब कैसा मनुहार?
रहने दे, मत चढ़ा, वीन के मृदुल मनोरम तार।

रोने और बिलखने वाली उन घड़ियों के पास।
प्रतिपल टूट रही आँसों की उन लड़ियों के पास।
दिल के अंदर, दर्दों के सावन की झड़ियों के पास।
चल, झोपड़ियों में दीवाने! झोपड़ियों के पास।
ओ बेखबर, घृणित कल्पना! ले, यह दृश्य निहार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

जहाँ आदमी की कीमत है कौड़ी और छदाम।
जहाँ आदमी की काया है, पर, कुत्तों का काम।
लेना भी अपराध जहाँ है अधिकारों का नाम।
जहाँ गुलाम जनम लेता है, मरता जहाँ गुलाम।
वह भी कोई देश, और वह भी कोई संसार?
रहने दे मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

एक सुखों का सहचर, दुख से पाये नाता एक।
गम खाता क्यों एक, वहीं क्यों मौज मनाता एक।
एक कब्र के नीचे, उस पर चढ़ कर गाता एक।
दो विधान क्यों? जब कि एक ही विश्व, विधाता एक।
बहुत हो चुका, कौन सहे अब ऐसे अत्याचार।
रहने दे मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

आफत की मारी मानवता, आफत में है जान।
तम के सपनों पर सोया है तेरा स्वर्ण विहान।
दुनिया कहाँ, कहाँ तू, तेरे कहाँ मधुर अरमान।
इस पतझड़ में ओ दीवाने! गा मत मधु के गान।
सावन में चैता मत गा रे, गा मत चैत मलार।
रहने दे मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

मिमटी सी एकाध हृदय की साध समेटे आज।
मन से मधुर जिन्दगी की भी आशा मेटे आज।
बन-बन, विकल अरे! वल्कल के वसन लपेटे आज।
घूम रहे कितने दशरथ के कितने बेटे आज।
पानी पर पत्थर तैरेगा होगा सागर पार।
रहने दे मत उठा वीन के मृदुल मनोरम तार।

दुश्शासन के करों आज कितनी कृष्णा का चीर।
खिचा जा रहा, ढक न पा रहा उनका नग्न शरीर।
मौन खड़ा पुरुषार्थ-हीन सा कौन? पार्थ प्रणवीर?
दूर पड़ा गांडीव अभी तक दूर पड़ा तूणीर।
कुरु-क्षेत्र, तू क्यों न सुने फिर गीता की ललकार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

व्योम-वायु क्यों मौन अनल क्यों पानी-माटी मौन।
खुली न अब तक बलिदानों की द्वार-कपाटी मौन।
हँस हँस कर उस मधुर मरण की क्यों परिपाटी मौन।
पानीपत, क्यों मौन अभी तक हल्दीघाटी मौन।
एक बार मुर्दे भी करदे जिससे रण-हुंकार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

बलि का जन्म, विकट विप्लव के नाम करण का पर्व।
सत्ता वालों की सत्ता के दर्प-हरण का पर्व।
यह विनाश का विभव, प्रलय के प्रथम चरण का पर्व।
चलो, मनायें मिल मिल दोनों मधुर मरण का पर्व।
फूँक शंख, स्वर उड़ें गगन में प्रलयी पंख पसार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

रहे राम की शांति, रहे फिर भी लक्ष्मण का कोप।
महावीर के बल-विक्रम से अंगद सा प्रण रोप।
निशाचरों को महा मृत्यु के मुँह में दें हम ठेल।
रावणशाही जले, अनय की लंका का हो लोप।
और, वन्दिनी मानवता का हो फिर से उद्धार।
रहने दे मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

आज अमा में खुल कर खेले राका का अरमान।
अपकर्षों पर बने विजेता नव उत्कर्ष महान।
अरे! देख ले इन आँखों से नव युग का उत्थान।
चलो, मरण के पन्नों पर लिख दें जीवन का गान।
रुदन-रेत पर बहे वेग से मधुर हास की धार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार।

रँगी रक्त से धरा, रक्त से रँगा जब कि आकाश।
वज्र-लेखनी की नोकों पर उतरा विकट विनाश।
वाल्मीकि बन अरे! बावले, दीवाने, बन व्यास।
नये सिरे से लिख भारत का एक नया इतिहास।
जहाँ सत्य जीता, असत्य की हुई जहाँ पर हार।
रहने दे, मत चढ़ा वीन के मृदुल मनोरम तार॥

पगडंडी

तुम कौन किसी कमनीय कलामय कविता के
भावों में उलझी मौन मनोरम भाषा सी।
तुम कौन नवागत लाज—भरी सुकुमारी की
सकुचायी सहमी, साध—भरी अभिलाषा सी।

वह रात, कि जो रह गयी प्रतीक्षा के तट पर
वह बात, कि जो कुछ शेष और कुछ बीती सी।
जो भरी नहीं जा सकी किसी भी प्रियतम से
वसुमती वधू की माँग अभी तक रीती सी।

जो खिंची ख्यालों की दुनिया में खोयी सी
जो उभर न पायी, सोयी सी तस्वीर कौन?
जिसमें कि उषा की नयी जवानी की गुनगुन
तुम किसी किरन की सिमटी हुई लकीर कौन?

युग बीत गये आकांक्षा के आवरणों में,
किन-किन चरणों में लिपटी और लपेटी सी।
किस रम्य राम की मधुर प्रतीक्षा में रत सी
तू कौन अहिल्या, मौन यहाँ क्यों लेटी सी?

कुछ सीधी सी तो कहीं कहीं कुछ टेढ़ी सी
किस प्यार—परी की नाजुक नयन—निगाहों सी।
मोहन के मानस के पट पर यों लहराती,
राधारानी की अनचाही सी आहों सी!

तू कहीं पहाड़ों की चोटी पर कहीं मिली
तो कहीं वनों की खाक छानती रहती है।
तरु की छाया में कहीं, कहीं वन—कुंजों में,
जाने क्या मन में ठान ठानती रहती है।

तू किसी साँप की छूटी हुई सी केंचुल है
या धरा-दीप में धरी हुई सी बाती है ?
यह बात बताये कौन, किसे मालूम कहाँ,
तू चली कहाँ से और कहाँ को जाती है,

सर, सरित—सिन्धु के तीर जहाँ पहुँची पल में
डुबकी मारी, बस उस स्थल में पार हुई।
गति के नूपुर बज उठे सजग उस तट स्थल में,
जब जहाँ तुम्हारी झाँकी भी झनकार हुई।

तू पड़ी यहाँ क्यों किसी राह के पाँसा सी,
तू साँस निराशा की जैसे आहें भरती
तू सहन कर रही निरन्तर सब दुखियाँ सारी।
तू गहन गरीबी की उसाँस, सिसकी—ठंडी।

जो खींच रही है मुझे, प्यासी आँखों को
प्रिय की उँगली की एक नवीन इशारा सी।
तू लीन भावना में अपने ही में विलीन
अंतःसलिला सी किसी फल्गु की धारा सी।

क्या कहा ? कि तू जग बीच बड़ी बड़भागिन है,
दौलत वालों का मिला नहीं संपर्क तुझे।
तुझ में दुख भरता, और खटकता है जैसे
विष-भरा विषमता का यह फैला फर्क तुझे।

तेरी सीमा में कभी किसी की आँखों में
यह भूल—भरी सी धूल न डाली जाती है
क्या कहा ? कि तेरी सीमा में जनता भी
कब कहाँ किसी पर कीच उछाली जाती है।

तूने जब डाली नजर कि मानवता जागी
बर्बर पशुता से वंचित नोआखाली में।
भर गयी शांति की भरी-पूरी सी हरियाली
विद्वेष-द्रोह से सनी रक्त की लाली में।

तेरे उपवन में कभी सृजन के भावों के
मनु के पांवों के मधुर मनोरम फूल मिले।
यह लता जिन्दगी की जिससे फैली-फूली
तेरी ही सीमा में उसके मधु मूल मिले।

सखि, गूँज रहे हैं अभी तुम्हारे कानों में
वंशी के स्वर, संकुलित पायलों की रुनझुन।
तू कभी सँजोये होगी खोये वैभव के
संगीतों की एकाध साध से सधी सुधुन।

मानवता का मलयानिल भी है याद तुझे
तू देख रही दिन आज पाशविक आँधी के।
ओ मौनमयी! कुछ बोल, खोल आँखें अपनी,
पद-चिह्न छिपाये बैठ न गौतम-गाँधी के!

हो रहा चतुर्दिक राज-पथों के सीनों पर
दुर्धर्ष भयानक टैंक-मशीनों का घर्घर।
वह व्योम विकंपित और धरा कंपायमान,
यों गूँज रहे परमाणु और उद्जन के स्वर।

यह विश्व शान्ति का, समता का संदेश सुने
जन-जन के अंतर में जीवन का गान जगे।
इन कोटि-कोटि कुंठित पांवों में गति जागे
तू जागे, फिर, तेरा पहला आह्वान जगे।

जो भूल गया है युगों-युगों से जीवन का
संगीत मनोरम एक बार फिर गा दोगी?
क्यों छुयें छोर, दो सिरा तुम्हारे दामन का,
तुम हमें हमारी मंजिल तक पहुँचा दोगी॥

घंटा घर—

यह घंटाघर, अंधकार से घिरी रात यह!
स्याही के सागर में डूबी, अभी अभी की तिरी रात यह।
फैल रही नैराश्य प्रचुर सी, कलुषित उर सी
धूम्र धार सी, सब कुछ खोकर मिली हार सी
नव कलंक की आकृति सी, नव कुत्सित कृति सी
कालिन्दी सी, कज्जल गिरि से गिरा रात यह!

शीत वात के साथ, बात क्या? हिम प्रपात यह!
हिम प्रपात यह!
मौत मात हो गयी, और जिन्दगी सो गयी।

× × ×

यह घंटा घर! और उधर से कौन लुढ़कता चला आ रहा मनु का बेटा?
वह करुणा की कला, कि बनकर जैसे कोई बला आ रहा मनु का बेटा।
मनु का बेटा, सृष्टि-सार जो, निर्मित नियति का नव शृङ्गार जो
किन्तु, नियति से सज न सका जो।
विश्व-वीन का तार, कभी भी बज न सका जो।

वह मनु का बेटा बेचारा, मनु के बेटों ही के द्वारा,
अस्पताल से गया निकाला
हर दर की ही भाँति वहाँ भी, उसके लिये पड़ गया ताला
न्याय-नीति का, और दया का यह दीवाला!

× × ×

यह घंटा घर और पास ही सजे महल ये!
जहाँ, स्वर्ग साकार, चतुर्दिक चहल पहल ये!
मधु-सितार के तारों पर फिर रहीं उँगलियाँ
प्रीत-भरे, रस-रीत भरे संगीत सिंधु में
डूब रहीं तिर रहीं, उँगलियाँ
मधुर मूर्च्छना के, मीड़ों के घेरे में घिर रहीं उँगलियाँ।

नर पिशाच मधु की मस्ती में झूम रहा है,
प्याले पर प्याले की चितवन चूम रहा है,
लाल परी के साथ वासना के पनघट पर घूम रहा है ।

× × ×

यह घंटाघर, और यहाँ यह किस गरीब की लाश
अनबोले ही, आँखें खोले करती किसे तलाश ?
काश ! कोई आ जाता !
और नहीं, दो प्यार, प्यार से नयनों के मोती दे जाता ।
किन्तु, व्यर्थ है, व्यर्थ बात यह !
दिन के सपने व्यर्थ, अँधेरी खड़ी रात यह !
रे बेचारे, व्यर्थ तुम्हारे यह विचार हैं ।
जीत कहाँ ? जिन्दगी बन गयी जब कि हार है ।
तेरी लाशों की लाली भी, मिट न सकेगी ।
आज मौत की सत्ता में भी
चिर उपेक्षिता कला चैन से खिल न सकेगी ।

अपनी भरी हुई आँखों से
आहत अन्तर की आहों से
माँग रहा तू राहत, किससे ?
इस समाज से, तथा कथित इस रामराज से,
बीते कल से, या कि आज से ?

× × ×

यह घंटाघर इसके नीचे सोच रहा कवि,
अपने ही भावों में जैसे अपने आप सोच रहा कवि
सोच रहा कौन
कब तक यह इन्सान मृतक की भाँति जियेगा ?
कब तक गम खाकर आँसू के घूँट पियेगा ?
सामन्तों के आँगन में अश्रुओं का नर्तन होगा कब तक ?
शोषित पीड़ित जग के जीवन का उफ़ ! परिवर्तन होगा कब तक ?
कब तक इस शोषण-दोहन का चक्र चलेगा ?
और भाग्य पर बैठा मानव हाथ मलेगा ।

कलाकार से

तुम कलाकार हो !
तुम जड़-चेतन के हृदय-हृदय में व्याप्त
प्रकृति से प्राप्त प्यार हो, निर्विकार हो !
तुम कलाकार हो !

तुमसे जो रेखा खिंची, सुधा से सिंची सधी स्वर-लहरी
फैल गयी जन-जन के मन में, युग-जीवन में
अमृत-धार सी, मधु-फुहार सी, अमित अमरता गहरी ।

अहे ! तुम्हारा एक शब्द भी
अयुतायुत अविराम अब्द के वक्ष अटल पर
निखिल विश्व के भाग्य-पटल पर
अमर समर-संकेत बन गया ।
गूँज उठी वह वाणी, जन-कल्याणी,
उद्वेलित हो उठे जगत के प्राणी-प्राणी,
पल-पल के पीड़ित प्राणों में जब कि एक कुरुक्षेत बन गया,
महायुद्धका हेत बन गया ।

हमें याद है, अभी रक्त से भरी हुई वह गगरी !
लाख-लाख शोषण की जिसमें साख मिट गयी,
सहसा बनकर राख मिट गयी जब सोने की नगरी ।

किन्तु, समय का यह परिवर्तन, विकृति-विवर्तन !
कला, कला के लिये कर रही आज तुम्हारे उर में नर्तन !

जीवन को संजीवन जैसे महा मृत्यु के मरण-चिह्न वे,
सबल शौर्य्य के साथ साहसिक विजय-वधू के वरण-चिह्न वे,
जन-जन के जागरण-चिह्न वे,
देव, कहाँ हैं आज तुम्हारे चरण-चिह्न वे ?

जिन्हें जान कर, मूर्च्छित, मोहित जन को, मन को
तिमिर तिरोहित लक्ष्य-भेद का ज्ञान हो सके ।

जिन्हें जान कर, जगती तल में कोई मनुज महान हो सके।
जिनकी छवि-छाया को छू कर डगमग डग भर
एक-एक पग, मग के अन्तिम क्षीण छोर पर मिलें, पुलक से खिलें
गोधूली की मधु वेला में उस भूली सी मंजिल की पहचान हो सके।

देख रहे तुम आज विषमता का भीषण अभिशाप!
मानव के हाथों मानव के उत्पीड़न का पाप!
काल-गाल के ग्रास, अरे! वे कोटि-कोटि कंकाल पिस रहे।
इसी व्योम के नीचे अनगिन इसी धरा के लाल पिस रहे,
और, हवा के महल बनाने में तुम हो तल्लीन।
कौन रागिनी छेड़ रही है आज तुम्हारी वीन?
आसमान के सात सितारे तोड़ रहे तुम आज।
आसमान से अपना नाता जोड़ रहे तुम आज।
किन्तु, जहां, जिस पर रहते हो,
जिसकी ममता की धारा में रात-दिवस बहते हो
उस धरती को नर्क बनाकर छोड़ रहे तुम आज
आज बह रही है आंसू की धार अथाह अकूल
ठहर सकेंगे कहां तुम्हारी मुस्कानों के फूल?

जीने ही के लिये कि जैसे जिये—
तुम कहते हो, कला, कलाके लिये
सुनो तो! युग, अपने स्वर-स्वर के बन्धन खोल रहा है।
हिम-गिरि के उत्तुङ्ग शिखर से
आज शंख की हुङ्कारों में बोल रहा है।

"यदि कला तुम्हारी कोटि-कोटि विक्षुब्ध बुभुक्षित
शोषित, दोहित, दलित, प्रताड़ित
दीनजनों को त्राण दे सके।
यदि कला तुम्हारी जीर्ण-शीर्ण जर्जर जीवन में
नई चेतना, नई जिन्दगी, नये जागरण प्राण दे सके।
एक नया निर्माण दे सके
तो कला, कला है।
अगर नहीं, तो कला व्यर्थ है, एक बला है।"

नई आवाज

यह एक नई आवाज कहां से आती है?
भर बूंद-बूंद का सिन्धु समर्थ हिलोरों में,
उठने वाले तूफान झुकी झकझोरों में।
छन में ही काया पलट गयी कन-कन की
जो व्याप गयी, वह छाप छिपाये छोरों में।
क्या सोज, और क्या साज कौन सा राज लिये
यह एक नयी आवाज कहां से आती है?

यह एक नयी आवाज, कि जड़ता डोल रही,
यह अदा और अंदाज, रुकना बोल रही,
जो दबा रहा दुविधा में, और दुर्वाचों में
वह इन्कलाब का राज जबानी खोल रही।
जाने क्या पड़ी तलाश लाश के ढेरों में
यह नई जान, जिन्दगी नयी मुस्कानी है।
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है?

बेबस बेचारे बंधे हुए अरमान खुले।
नव जीवन के, नव युग के नये विधान खुले।
है बात कौन, क्यों मौन दिशाओं का टूटा?
हर कली-कुसुम हर डाल पात के कान खुले।
साँसों के सजे सितार बजे उर के सुर में
गायन, जिसकी हर कड़ी हवा दुहराती है।
यह एक नयी आवाज कहां से आती है?

मुरझायी जिन्दगी उगी, उगी चट्टानों पर,
गति को नवीन अधिकार मिला अभियानों पर
गा रहा कहीं कोई जाने किन तारों से
छा रहा सृजन का राग प्रलय के गानों पर।
मदहोश किनारों को कारा से जोश-भरी
धारा बन कर हर लहर-लहर टकराती है।
यह एक नया आवाज कहाँ से आती है?

कब्रों ने लीं करवटें, जोश के जाम लिये,
जाने किस जादू, किस मंतर से काम लिये,
कुर्बानी के पेशवा बढ़े इतने आगे
जल्लादों ने कांपते कलेजे थाम लिये।
धरती से आहें उठीं, अपार सितारों के
छिद्रों से छलती आसमान की छाती है।
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है।

सिंहासन टूटे और धूल में ताज मिले,
आने वाला 'कल' सही तौर पर 'आज' मिले,
उर-उर से उठी पुकार ज्वार के जौहर सी
"जनता को जैसे हो, जनता का राज मिले"
जन-मत ने बाँधा जोर शोर के सागर में
शासन की जर्जर तरी डूबती जाती है।
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है?

भर गया तिलों का त्रास झूमते ताड़ों में,
लो, उठी धूल कँपकँपी हुई कि पहाड़ों में
नन्दन बनने को साध झाड़-झंखाड़ों में,
आर्यी दधीचि की शक्ति पिघलते हाड़ों में।
निर्माण नया फिर नये वज्र का होगा क्या?
वृत्रासुर की वाहिनी खड़ी अकुलाती है।
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है?

उठ रहे सवालों के जवाब की वेला है,
सच होने वाले सही खाब की वेला है,
कोई क्यों झिझके, आज बदलती दुनिया में
यह इन्कलाब है, इन्कलाब की वेला है।
गफलत की गर्दिश गयी, सजगता क्यों न मिले
जब नींद स्वयं सोतों को आज जगाती है।
यह एक नयी आवाज कहां से आती है?

यह एक नयी आवाज, चराचर झूम उठे,
नक्शे नयनों में नये नये कुछ घूम उठे,
संघर्षों की खुल रही राह धीरे धीरे
यह एक नयी आवाज उठी, मजलूम उठे,
जल रहा जहाँ यह जेठ, वहाँ उस सावन की
फिर रही छटा, फिर रही घटा बरसाती है।
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है?

बहती गंगा में हाथ अरे! धोने वालो!
वैभव के शव का भार व्यर्थ ढोने वालो!
तुम सुनो जमाने की पुकार सँभलो, चेतो,
मखमली सेज पर मस्त अरे! सोने वालो!
उठ रहा धुआँ, जल जाय न सोने की लंका,
हर कुटी लगाती आग, आग सुलगाती है
यह एक नयी आवाज कहाँ से आती है?

जागरण-गीत—

जाग, अरे इन्सान ! नींद से जाग अरे इन्सान !

धरती ने करवट बदली तो काँप उठा आकाश।
तारे डूबे, टूट रहे सब सरमाया के पाश।
सृजन से सहम रहा है नाश,
निखर सा उठा नवीन विकास,
आज खगों ने खुलकर गाये तिमिर-विजय के गान।
परों में एक नवीन उड़ान,
स्वरों में जीवन का संधान। नींद से जाग अरे इन्सान !

नयी चाह में नयी चेतना की मधुमयी हिलोर।
उद्वेलित हो उठी, कि जिसमें डूबा जग का छोर।
धूल की धाक हो गयी धूल,
दूर कोसों सुधि से भी शूल,
फूलों के मन में मस्ती की आई मदिर उठान !
ओस में चमक उठी अम्लान,
रुदन के अधरों की मुस्कान,
नींद से जाग अरे ! इन्सान !

दिशा-दिशा में लगी दहकने इन्कलाब की आग
कण-कण के कंठों से गूँजा परिवर्तन का राग।
हवा भी रही प्रभाती टेर,
गुफा में मरा मौन अन्धेर,
सिचे शक्ति से, खिचे किरन के तीखे तीर-कमान
एक से एक नये सधान,
तमीचर भागे लेकर जान,
नींद से जाग अरे ! इन्सान !

साहस ने दी जोड़ सबलतम संघर्षों से होड़
तोड़ भ्रान्ति का घेरा राही चला बसेरा छोड़।
पगों से लिपटी लम्बी राह,
डगों से चल पड़ने की चाह,
मजबूरी में है मंजिल की दूरी का अवसान।
सुप्ति में नव जागरण समान
प्रगति हो गयी स्वयं गतिमान,
नींद से जाग अरे! इन्सान!

आँखें खुली अचानक टूटे सपनों के प्रासाद।
अपने-अपने अधिकारों की आयी सबको याद।
मचा नव विप्लव नव विद्रोह,
तचा प्राणों-प्राणों का मोह,
नई जिन्दगी, नया जागरण, और नवीन जहान!
नये उर-अंतर के अरमान
नई दुनिया के नये विधान,
नींद से जाग अरे! इन्सान!

अब न रही सोने की बेला अब न रही वह रात।
जीवन में संजीवन छाया, आया नया प्रभात।
जगे नव मानव का अनुराग,
नयी संस्कृति का नया सुहाग,
जन-जन की जागृति के आगे जागे हिन्दुस्तान।
जगें जग के मजदूर किसान,
खुशी से खिले खेत खलिहान,
आज प्रकृति ने भी फहराया अपना लाल निशान।
नींद से जाग अरे इन्सान!!

श्रमदान

युग मांग रहा श्रमदान, चलो श्रमदान करें !

श्रम की भूखी है, आज धरा श्रम की प्यासी,
श्रम की सत्ता का विश्व बना चिर विश्वासी।
श्रम-संकेतों पर चलता है भव का वैभव;
श्रम ही काबा है और हमारा श्रम काशी।
श्रम, धर्म ध्येय, ईमान, चलो श्रमदान करें।
युग मांग रहा श्रम-दान, चलो श्रमदान करें।

श्रम के पद-रज से दीप्त हिमालय का सर है,
श्रम की अंजलि में सिमटा विस्तृत सागर है।
श्रम ने मरु में भी नन्दन का निर्माण किया;
श्रम की लपेट में लीन निखिल नीलांबर है।
श्रम ही सुख की पहचान, चलो श्रमदान करें—

श्रम ही क्या ? जो सूखी सिकता से तेल न ले
शत-शत बाधाओं के भावों से खेल न ले
जो झेल न ले जीवन के झोंके झूम-झूम—
श्रम ही क्या ? जो मानव-मानव का मेल न ले
श्रम की है शक्ति महान चलो श्रम-दान करें

चौदह रत्नों की चाह भरी सी थाती पर
श्रम ने पायी है विजय प्रकृति मदमाती पर।
है बात नरों की कौन ? वानरों के श्रम ने।
रच दिया शक्ति मय सेतु सिन्धु की छाती पर।
बन गये उपल जल-यान, चलो श्रमदान करें।

जगती का ढोया भार सदा भारी श्रम ने।
बाजी कब कोई कहाँ कहीं हारी श्रम ने।
साक्षी जिसका इतिहास रुदन भी हास बना,
मिट गयी करम की रेख, मेख मारी श्रम ने,
विधना के मिटे विधान चलो श्रमदान करें।

युग की पुकार, जग की पुकार है आज चलो।
धरती पर ही सज उठे स्वर्ग का साज चलो
शाश्वत स्वदेश की शक्तिमयी अनुरक्ति लिये
जन-जन में जाग्रत हो जनता का राज चलो
इन्सान बने इन्सान, चलो श्रमदान करें।

तुम भरो चेतना नई भावना भोली में
तुम भरो शक्ति संपत्ति हृदय की झोली में
तुम राजा रंक अमीर यती जोगी भोगी
तुम सुनो शान्त हो आज हवा की बोली में
लो, बोला हिन्दुस्तान, चलो श्रमदान करें।
युग माँग रहा श्रमदान चलो श्रमदान करें।

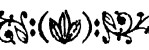

आज का दिन

आज का दिन, जब कि जग के चित्रपट पर
खिंच उठी लघु एक क्षीण लकीर !
एक क्षीण लकीर, जिसमें उभर आयी विश्व की तस्वीर।
वह तस्वीर जिसका बिम्ब विपुल विराट्, सूक्ष्म शरीर।
जिस में प्यार था, थी पीर, नयनों का आकुल नीर।

आज का दिन, जब कि मानव को मिला,
चिर सत्य का, चिर शांति का उपहार।
बज उठे टूटे युगों के तार,
किन्नरों, अमरों-नरों में
मंजु मुखरित हो उठी शत-शत स्वरों में
मौन अंतर्वीन की झन्कार

आज का दिन, फूल में जब शूल की ममता समायी,
शूल में भी फूल की छवि-छाप छायी।
दूर गति से जब हुआ अवरोध
साथ लेकर बैर और विरोध
खो गया जब प्यार में प्रतिशोध,
आत्मा में हो गया परमात्मा का बोध।

आज का दिन, जब कि हिंसा नत हुई निरुपाय,
कर्म मय भय-हीन मन वच काय।
हट गयी जब हेय शस्त्रों की हठीली होड़।
जिन्दगी की राह ने पायी नई सी मोड़
मोड़ वह, जिससे कि मंजिल मिल गयी तत्काल अपने आप।
पुण्य के अनुरूप आया, मुस्कराया पाप।

आज का दिन, एक सपना जब हुआ साकार,
स्वर्ग ने मानी धरा से हार,
और, नरता ने अमरताका किया शृङ्गार।

आज का दिन आँसुओं ने जब चुने
मुस्कान के मोहक मनोरम फूल ।
हम सुने, देखे कि हिम गिरि के शिखर पर
छा गयी धुँधली धरा की धूल ।

आज का दिन, दलित दीन असंख्य प्राणों को
मिला बल, और संबल, प्यार, प्यारा प्यार का पल,
प्यार का पल वह, कि जिसमें शक्ति थी अनुरक्ति भी थी
भावना थी, भक्ति भी थी, और था कमनीय एक विकास
जिन्दगी की धार में जिसने उठाया हेम, हीरक-हास
नव विभा वैभव विचुम्बित विमल वीचि-विलास
लहरित लास ।
आज का दिन, जब कि मैकत विश्व में उमड़ी अमृत की धार ।
उमड़ा प्यार-पारावार ।
आज का दिन जब कि बापू ने लिया अवतार,
जग में हुई जय-जयकार ।

छब्बीस जनवरी

फिर आयी छब्बीस जनवरी लिए विगत की याद ।
और याद वह, जिसमें जागे सपनों के उन्माद ॥

वह उन्माद, कि जिससे खौला खुल कर ठंडा खून ।
और खून वह, जिसमें जागा सोया हुआ जुनून ॥

वह जुनून, जो मिला हमें था उफ़ ! सदियों के बाद ।
टूट गयीं गैरत की कड़ियां देश हुआ आजाद ॥

हमें आज भी याद [illegible] वह गली का [illegible] ।
फूल छोड़ कर जहाँ संजोये हमने सौ सौ शूल ॥

मचल उठे अनगिन प्राणों में मिटने के अरमान ।
कोटि-कोटि कंठों से गूंजा आजादी का गान ॥

हिमगिरि का हो गया कि सहसा अभिनत ऊंचा भाल ।
पहना दी गङ्गा ने अपनी लहरों की जयमाल ॥

मंत्र मुक्ति के लगी जगाने पैरों की जञ्जीर !
जीत बन गयी हार युगों की, प्यार बन गयी पीर ॥

कारा की दीवारें लिखतीं हैं जिसका इतिहास ।
जहाँ सृजन का साज सजाने आया निष्ठुर नाश ॥

हथकड़ियों ने जब दुहराये उन घड़ियों के गीत ।
प्रीत प्रलय की मिली, बने हम मधुर मौत के मीत ॥

वे बलि के बन्दे, फाँसी के फन्दे जिनके हार ।
नवयुग का जय-घोष बन गयी जिनकी मौन पुकार ॥

धधक उठे शोले अंगारे धधक उठी वह आग ।
एक एक रज-कण ने खेले गरम खून के फाग ॥

व्रत बन गया हमारा उस दिन त्याग और बलिदान ।
आसमान तक फहराये जब हमने विजय निशान ॥

किन्तु, आज का हाल न पूछो मत पूछो कुछ बात।
अंधकार से पिंड न छूटा यद्यपि हुआ प्रभात॥

उस दिन की वह याद, आज की घृणा-भरी तस्वीर।
मार रही जैसे अन्तर में सौ-सौ तीखे तीर॥

यह कुयोग! यह बात व्यथा की!! योग बन गया भोग।
फैल गया जन-जन के मन में नीच स्वार्थ का रोग॥

प्राण-प्राण की यह पामरता! पूँजी का यह जाल।
तड़प रहे जिसकी पीड़ा से कोटि-कोटि कंकाल॥

कंठ दूसरे, किन्तु गूंजते वही बेसुरे राग।
उगल रही है जहर विषमता बन कर काला नाग॥

जी में आता है फिर फैले इन्कलाब का शोर।
संघर्षों के सुप्त सिन्धु में आये नई हिलोर॥

नये सिरे से बलिवेदी का हो नवीन शृङ्गार।
भरें नये हुंकार हृदय में वीन-वीन के तार॥

अंतर-अंतर में लहराये छाये पावन प्यार।
प्राण-प्राण में नये सलोना समता का संसार॥

वर्तमान युग के जीवन में भरने नव उन्माद।
फिर आयी छब्बीस जनवरी लिए विगत की याद॥

ताल का पानी

कुछ सीमाओं से घिरा हुआ चुपचाप मैं।
बन गया किनारों का बन्दी क्यों आप मैं?

रह सकी न अपने रूप-राशि में, रंग में,
निर्झरी नतमुखी होने को सन्नद्ध हुई।
यह राह कौन, यह चाह कौन जाने कैसे,
मेरी असीमता मिटी कि सीमाबद्ध हुई।
रंगीन रुपहली तज कर पहली छाप मैं,
बन गया किनारों का बन्दी क्यों आप मैं?

है बोध मुझे, अवरोध खिंचे हैं, राह में,
लहरें उठ कर अपने ही में रह जा रहीं।
यह लाचारी, बेबसी, और यह मजबूरी!
अरमानों की भी बात न कुछ कह पा रहीं।
वरदान-भरे अपनेपन का अभिशाप मैं।
बन गया किनारों का बन्दी क्यों आप मैं?

पाँखों में है चट्टान बँधी लाखों मन की,
आँखों में सूनापन, प्राणों में भार है।
मजबूर, गगन से दूर, चूर मन का पंछी,
भावों में भ्रम है, पाँवों में जंजीर है।
इस एक परिधि का रहा युगों से माप मैं।
बन गया किनारों का बन्दी क्यों आप मैं?

जी में आता है, जले ग्रीष्म की वह ज्वाला,
अस्तित्व कि जिससे जल कर छन में छार हो।
यह भेद, और यह भाव न रह जाये बाकी,
मेरे जीवन की नाव रेत से पार हो।
उड़ जाऊँ बन कर आसमान में भाप मैं।
बन गया किनारों का बन्दी क्यों आप मैं?

हर ओर खड़ी दीवार व्यूह सी, बाधा सी,
हर ओर हमें हँस रही हमारी हार भी।
हर ओर मौन मायूस जिन्दगी के सपने,
हर ओर मिलन-संकेत, सिन्धु का प्यार भी।
ढो रहा निरंतर अन्तर का अनुताप मैं।
बन गया किनारों का वन्दी क्यों आप मैं?

उठ अरी! तरंगों की वेला, तूफान-भरी,
चिर सुप्त सँजोई सुधियों को झकझोर दे।
टूटी लहरों को सबल ज्वार का जोर दे,
दे एक नवीन हिलोर, तटों को बोर दे।
पा जाऊँ अपना अगम असीम अमाप मैं।
बन गया किनारों का वन्दी क्यों आप मैं?

कुछ सीमाओं से घिर हुआ चुपचाप मैं।
बन गया किनारों का वन्दी क्यों आप मैं॥

अंतर्बासी से

"साँस घुटती है और पूँजी लुटती है सदा,
मात क्रूरता की करामात यहाँ होती है ।
पास में, पड़ोस में बिछाये वंचना का जाल,
आये दिन घात-प्रतिघात यहाँ होती है ।
काली करनी से भरे दिन की न पूछो बात,
खाली खतरे से नहीं रात यहाँ होती है ।
मौत साधना की ठगती है मौत जीवन को,
आग लगती है बरसात यहाँ होती है ॥"

× × × ×

जाना गया ठीक सर्व सम्मत से माना गया,
जिम्मेदार उचित मरम्मत के होगे तुम ।
मेरे नियमों के बन्धनों में बँध के सदैव,
संकट सहोगे, किन्तु कुछ न कहोगे तुम ।
आया होश तुमको ? बकाया में समेत ब्याज,
तय था किराया करुणा का मुझे दोगे तुम ।
अरजी तुम्हारी, किन्तु मेरी मरजी से सदा,
मेरे इस मन के मकान में रहोगे तुम ॥

धूम है तुम्हारे नाम-काम की महीतल में,
मायादार, सूम सरमायादार तुम हो ।
पाया गया तुममें प्रपंच तुम पायादार,
कायादार मैं, परन्तु छायादार तुम हो ।
कल परसों की कौन बात ही रही जनाब !
बीत गये बरसों बकायादार तुम हो ।
जानते नहीं हो, पहचानते नहीं हो मुझे,
मालिक मकान मैं, किरायादार तुम हो ॥

बचना तुम्हें है यदि अनट अशोभन से,
अपने बखाने बचनों से अभी नट जाव ।
पास में न दाम जो छदाम भी तुम्हारे शेष,
आज विश्व-शासन के आसन से हट जाव ।
बीच में बचाव का न कोई चाव भाव भी है,
राही इस तट के रहो, या उस तट जाव ।
हर घट वाले, हर घाट और बाट वाले,
ठाट बाट वाले जरा टाट तो उलट जाव ॥

हो रही तबाही वाहवाही में तुम्हारी यदि,
इस गुमराही शाही ठाट को बदल दो ।
कुसुम खिले न कामना के जिससे कदापि,
मंजिल मिले न उस बाट को बादल दो ।
खूबी खुदी जिसपे तुम्हारी बेखुदी की उस
भाव—भरे कपट—कपाट को बदल दो ।
काम न चलेगा अब दामन बचाये आज,
दामन में अपने विराट को बदल दो ।

दो तिनके

आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही।

युगों-युगों से बहते हैं हम जाने कब तक बहना होगा।
कौन सुनेगा, मौन जगत है किससे कौन उलहना होगा।
डगरी भूली, नगरी भूली, भूल गया वह देश हमारा,
टकरा कर चंचल लहरों से लहरों में ही रहना होगा।
कितने आये, गये यहाँ से रह न सकी कुछ नाम-निशानी।
सिसक रहे हैं अब भी उनके वे कुचले अरमान बटोही।
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

डूब डूब कर गहन गर्त में सहसा तिरने का क्रम देखा।
उल्लासों से ऊपर उठ कर नीचे गिरने का क्रम देखा।
अपनेपन से दूरी इतनी! मजबूरी की यह परिभाषा!!
राका की राजस रजनी को तम से घिरने का क्रम देखा।
इस अबाध गति से अन्तर में कितनी असफल साध समेटे।
बन कर मिटना, मिट कर बनना जग का यही विधान बटोही।
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

कोई भूली याद लिये जब जहाँ कूल की ओर चले हम।
किसी अपरिचित की अनजानी बन करुणा की कोर चले हम।
छू न सके उसकी सीमा भी अभिलाषा रह गयी अधूरी।
सहसा उमड़ी हुई कहीं से आयी एक हिलोर चले हम।
चलने ही चलने का क्रम है, श्रम है, पर रुकना भी भ्रम है।
आज यहाँ की शाम, न जाने कल हो कहाँ विहान बटोही
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

मिलन-फूल फूला, मुरझाया अमर शूल सी खिली जुदाई।
मिलन, एक सपना सा बीता तिल-तिल दुख से झिली जुदाई।
जाने, किसने सृजन किये हैं इस दुनिया के नियम निराले।
पल भर का यदि मिलन मिला तो युगों युगों की मिली जुदाई।
आँखों अधरों की किस्मत में कितना भारी भेद भरा है!
घन का निशि दिन रोना, पल भर बिजली की मुस्कान बटोही।
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

रुक न सकेगा पल भर को भी नियति-नियम का चंचल रथ ये।
इति जिसकी हो सकी न अब तक इस प्रवाह का ऐसा अथ ये।
बोलो, मैं बतलाऊँ कैसे मंजिल कितनी दूर हमारी।
जितना ही बढ़ते हैं पथ पर उतना ही बढ़ता है पथ ये।
इसकी इति क्या, इसका अथ क्या, इसका पथ क्या कौन बताये।
अब तक इस अस्थिर जीवन का हो न सका अवसान बटोही।
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

हम परदेशी थके राह के, तनिक यहाँ दम भर दम ले लें।
अपनी अपनी कहें कहानी एक दूसरे का गम ले लें।
आज जेठ के आँगन में भी झूम-झूम सावन लहराये।
दिल की प्यास बुझे कुछ भी तो इन आँखों से शबनम ले लें।
धूमिल रेखा धुली हमारी चतुर चितेरे की तूली से
विस्मृति-पट पर चमक उठी फिर वह पिछली पहचान बटोही
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

इस वसन्त के बाद, सुमन फिर उस निदाघ में खिल न सकेंगे।
सुई-सूत्र का मेल न होगा फटे हृदय भी मिल न सकेंगे।
कौन जानता, कहाँ मिले कब, नदी-नाव संयोग हमारा।
अगड़े पिछड़े के अन्तर में अबकी बिछड़े मिल न सकेंगे।
एक राग से, एक रंग से एक कंठ, स्वर-लय से आओ।
विरह-वीन पर पल भर गा लें मधुर मिलन के गान बटोही॥
आज मिले अनजाने पथ पर हम दोनों अनजान बटोही॥

बापू !

निविड़ निशा के अंधकार में,
नव विहान से उतर पड़े तुम।
उदय-गान से उतर पड़े तुम।
उतर पड़े तुम अखिल गगन से, आशा, पथ से
किरन-जाल पर, सांझ-भोर की नव हिलोर पर
कोर-कोर पर, [illegible] ज्योति जगाते !
राग [illegible] पूरित गाते।
राग, कि जिससे सुप्त विश्व की आँख खुल गयी।
धुला अखिल आकाश प्यार से [illegible] भाव से धरा धुल गयी।

कोटि कोटि कुंठित प्राणों में तुमने जाग्रत प्राण भर दिये।
जीर्ण-शीर्ण जग के जीवन में नये नये निर्माण भर दिये।
तुम ईसा, सुकरात, मुहम्मद, राम, कृष्ण के प्रतिनिधि पावन।
उर में जलता जेठ, तुम्हारे नयनों में पलता है सावन।
कोटि कोटि जन पतित अपावन,
एक तुम्हारे प्यार-परस से शुद्ध बन गये।
पावन परम प्रबुद्ध बन गये।
तुम जन-जन के, युग जीवन के गौरव गौतम बुद्ध बन गये।

अहे ! नाश के अवरोधक तुम ?
सतत शांति-सत के शोधक तुम,
बोधक अभिनव आत्मज्ञान के, युग महान के,
हे जन-नायक, युग युग युग के भाग्य विधायक,
समीचीन तुम।
तुम द्रष्टा स्रष्टा, संसृति के, और सृष्टि-सम्राट दीन तुम।
पुरुष पुरातन चिर नवीन तुम।

एक-एक कण को बलिदानी कर्ण कर दिया,
स्वर्ण कर दिया छूकर तुमने माटी को भी।
रुदन गीत में, हार, जीत में,
द्वेष-द्रोह को, प्यार, प्रीत में,
बदल दिया चिर मानवता में पशुता की परिपाटी को भी।
तुमसे ही तो मिला राजपथ दुर्गम जीवन घाटी को भी।
खोल दिया तुमने जन-जन की अंतर्द्वार कपाटी को भी।

जीवन-सागर के मंथन में धधक उठी जब भीषण ज्वाला,
लाख लाख लोहित लपटों से
लगी जलाने देव-दनुज को, और मनुज को।
नील कंठ, तब तुमने गर्हित गरल पान कर
हाहाकार-भरी संसृति में शांति बिखेरी।
ऐसी रम्य रागिनी तेरी।

उर-उर में उठते भावों की विमल वीचि तुम,
अपने अभिनव अस्थि-दान के युग-प्रतीचि तुम।
अस्थिदान वह, जिससे अनगिन वृत्रासुर का अंत हो गया।
अस्थिदान वह, जिससे पतझड़ में ही आज वसंत हो गया।
अस्थिदान वह, जिसमें अंकित बलिदानों का उज्ज्वल लेखा।
अस्थिदान वह, जहाँ गत गत इतिहासों का जिसमें लेखा।
युग ने पाया, युग ने देखा।

प्रेम-पथी, पथ के रोड़ों ने स्वागत-गान तुम्हारे गाये।
कोटि कोटि शूलों को छूकर तुमने पल में फूल बनाये।
गिरि-शृंगों ने नमन, हवा ने किया सदा अनुगमन तुम्हारा।
तुम उतना ही बढ़े, हुआ जब जहाँ कि जितना दमन तुम्हारा।
सोख गया शोषण-समुद्र को कुंभज सा आचमन तुम्हारा।
करुणा की वरुणा है तुममें गरिमा की गंगा की धारा।
नभ के नीचे दबी धरा का तुमसे ऊँचा हुआ सितारा।
मानवता के तुम ध्रुव तारा।

कैसी, किसकी कौन तूलिका ? खींच सके तस्वीर तुम्हारी ।
सौ-सौ रंगों से भर देती चित्र-पटी, सुनसान तटी को
अद्भुतम एक लकीर तुम्हारी ।
अंबुधि के अंतर से उठती ग्रंथ भी अविरल पीर तुम्हारी ।

अपना सब कुछ लुटा लुटाकर तरुण तपस्वी त्यागी तुम हो ।
अन्यायों से लड़ने वाले तुम विद्रोही, बागी तुम हो ।
आगी, राग विरागी तुम हो ।

निहित तुम्हारी नस-नस में हो नारायणता निरत निरंतर ।
भरा तुम्हारे संकेतों में जैसे कोई जादू-मंतर ।
जिसमें परवश परवश जैसे खिंचे जा रहे युग-मन्वन्तर !

आज तुम्हारी मधुर याद का अनावरण है,
पुलकित सी हो रही जिन्दगी शंकित सा हो रहा मरण है ।
करुणा की कमनीय कान्ति में, सत्य शांति की भर कर निष्ठा ।
प्राण-प्राण में आज तुम्हारी करते हैं हम प्राण प्रतिष्ठा ॥

सरिता

मुक्त मैं हूँ, मुक्त मेरी धार !

मुक्त 'कल कल' का मधुर संगीत,
हार से भी मुक्त मेरी जीत।
सामने सुन्दर भविष्य महान;
मुक्त मेरा वर्तमान-अतीत।
मुक्त मेरी प्रगति का संसार।
मुक्त मैं हूँ, मुक्त मेरी धार।

वेग में है विकट विप्लव-शक्ति,
कामनाओं में भरी आसक्ति।
पथ, अरे ! पथ की न पूछो बात,
लक्ष्य-भेदन की अटल अनुरक्ति।
ध्येय पर मेरा अजेय विचार।
मुक्त मैं हूँ, मुक्त मेरी धार।

हृदय में ऐसी व्यथा गंभीर,
रक्त जो था, बन गया वह नीर,
एक आकुल भावना से आज,
पर्वतों की वज्र छाती चीर—
चल पड़ी मैं कर प्रचंड प्रहार।
मुक्त मैं हूँ मुक्त मेरी धार।

वक्ष मत तानो, हटो तुम दूर,
बात भी मानो, हटो तुम दूर,
चूर होने को न रोको राह,
दूर चट्टानों ! हटो तुम दूर,
तुम मुझे बाँधो न क्रूर कगार।
मुक्त मैं हूँ मुक्त मेरी धार॥

शरणार्थी बालक

किस गोदी का लाल, अरे ! वह किन आँखों का तारा
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

मन पर है अंधियार दुखों का तन पर लटी लँगोटी।
वह अपना सर्वस्व गँवा कर माँग रहा है रोटी।
सोना उगला देश का, फिर भी उसकी किस्मत खोटी।
वह दुखिया है, अरे जमाना ! उसे न काट चिकोटी।
होकर यों असहाय, हाय ! वह खोकर सगा सहारा।
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

नाजों का मुहताज आज है वह नाजों का पाला।
फूल, धूल पर, किन्तु न छूटी काँटों भरी कसाला।
आह ! कुमति की कैकेयी ने कैसा अवसर डाला।
लाखों दशरथ मरे, राम का लाखों देश निकाला।
और, शांति की सीता को भी हमसे किया किनारा।
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

कोई उसका रोना समझे सुने कलपना कोई।
एक एक पल बीच दुखों के देखे खपना कोई,
अब न रहा उसकी आँखों में उसका सपना कोई।
आज विश्व में कौन कहाँ है ! उसका अपना कोई।
उसकी आँखों से आँसू का उमड़ा सागर खारा।
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

गीला-गीला सी धरती है आसमान भी गीला।
ठिठुर रहा है सदन भाग कर आज गान भी गीला।
युगों-युगों से सूखे मरु का प्राण-प्राण भी गीला।
एक-एक क्षण, एक-एक कण का जहान भी गीला।
सिमटी दुनिया की उदारता, उसने हाथ पसारा।
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

साँस साँस पर झूल रही हैं युग सी पल, छिन घड़ियाँ,
दिल में आग, उसाँसों में वह लिये अश्रु की झड़ियाँ।
उसके पथ में वे पहाड़ सी पड़ीं कड़ी कंकड़ियाँ।
पत्थर में पिसती हैं जाने क्यों मोती की लड़ियाँ!
दुख से ऊबा, दुख में डूबा वह बालक बेचारा—
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

देख रहा वह, उसे दया की कहाँ निगाह मिले तो।
उन फैली बाहों को कोई फैली बाँह मिले तो।
उसकी आहों से दुनिया के दिल की आह मिले तो।
वह चलने के लिये खड़ा है कोई राह मिले तो।
उसकी नन्ही नैया ठहरी दुख की गहरी धारा।
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा।

आज सिन्धु में उद्वेलन है धरती डगमग डोली!
आज सुहागों की होली है, और रक्त की रोली।
दानवता से दबी, दुखी है वह मानवता भोली।
बोल रहा है कौन कहाँ से किस विप्लव की बोली?
गूँज रहा जिसके जवाब में इन्कलाब का नारा
घूम रहा अनजान अभागा दर-दर मारा-मारा॥

महल

तुम विलासिता का विषम अंधेरा बन कर,
अन्याय-पूर्ण इस आन बान से तनकर ।
किन मजलूमों को मिटा मिटा कर कितने ?
तुम खड़े यहाँ पर रक्त मांस में सन कर ॥

खोकर औरों को त्राण तुम्हारा होना,
उल्लसित अनय से प्राण तुम्हारा होना ।
पिसतीं हैं जर्जर दुर्बल हड्डियाँ कितनी ;
तब जाकर यह निर्माण तुम्हारा होना ॥

तुम ढाल रहे हो सदा जुल्म के प्याले,
बदमस्ती में बदमग्न बने मतवाले ।
ऊपर के रंगों की क्या कीमत होगी !
जब हो भीतर के कुटिल कलंकित काले ॥

संचय करना है पाप तुम्हारा जीवन,
जग-जीवन का अभिशाप तुम्हारा जीवन ।
यों बन कर के साकार भार भूतल का,
मिट जाय न अपने आप तुम्हारा जीवन ॥

तुम ऊँचे उठ कर गगन चूमने वाले ।
अपनी मस्ती में आप झूमने वाले ।
अब जरा सम्हल कर देख किधर ढलते हैं
उत्थान-पतन के चक्र घूमने वाले ॥

तुम लीन हो रहे नूपुर की रुन-झुन में,
तुम लीन हो रहे हो अपनी ही धुन में ।
पर, तुम्हें पता क्या चला कभी कुछ कह रे ;
यह प्रकृति आज है किस उधेड़ में, बुन में ॥

पशुता के कृत्यों की उपाधि, कुछ बोलो,
जग के जीवन की आधि-व्याधि, कुछ बोलो।
शोषण में कितना स्वाद तुम्हें मिलता है?
बोलो, मानवता की समाधि, कुछ बोलो॥

तेरी दुष्कृति से सभी सुखों से छूटी,
तेरे ही हाथों जिसकी किस्मत फूटी।
उसकी भी ओर विलोक, पास ही तेरे
वह घास-फूँस की पड़ी झोंपड़ी टूटी॥

भीषण भादों की रात घोर घन छाये
यों बरस रहे, फिर बाज हवा क्यों आये।
वह सौ-सौ आँसू सिसक-सिसक रोती है,
अधमरे जनों को अपने बीच छिपाये॥

जिनके अधरों ने कभी न जाना जग में,
हँसना कैसा, क्या है मुस्काना जग में।
जिनको जीवन में मिली यहाँ दो बातें,
आँसू पीना, गम पर गम खाना जग में॥

बन गया पेट भी पीठ, पीठ से सट कर,
जर्जर कृश हुआ शरीर भूख से घट कर।
करते हैं सदा विहान क्षीण स्वर में वे
दाना! मुट्ठी भर दाना!! दाना!!! रट कर॥

वे भोले भाले दीन दुखी वे सच्चे,
दो दिन बीते, पा सके न दाने कच्चे।
अपनी ही आँखों देख रहे बेबस वे।
मर रहे तड़प कर आज दुधमुँहे बच्चे॥

जब कहीं न उनकी आह यहाँ टिक पाती,
तब नभ से जाकर बार बार टकराती।
फिर भी तू सका पसीज नहीं रे पामर!
तू पत्थर है, पत्थर की तेरी छाती॥

अपने हाथों मत स्वयं कब्र निज रच रे!
आहों की ज्वाला में न व्यर्थ ही तच रे!
मैं सच कहता हूँ, सच कहता हूँ! सच रे!!!
जन कोटि-कोटि कंकालों से तू बच रे!

वे विकट प्रलय का मंत्र जगाने वाले,
वे भय का भारी भाव भगाने वाले।
उनके दिल में कुछ धधक रही ज्वाला, वे,
तेरे वैभव में आग लगाने वाले॥

वे कुरु-क्षेत्र की भूली याद विगत हैं,
वे हल्दीघाटी हैं, वे पानीपत हैं।
वे मूक तपस्वी अलख जगाते जग में,
वे महानाश की उग्र निष्ठा में रत हैं॥

जो कायर को भी सबल शूर कर देती,
दुखिया दलितों के दुःख दूर कर देती।
बन कर जो भीषण क्रान्ति, एक ठोकर में
साम्राज्यों को भी चूर-चूर कर देती॥

"हो चला आज परिपूर्ण पाप का घट ये,
यों गूँज रही है राम-राम की रट ये।
उत्तप्त आँसुओं की धारा से कट कर
गिर जायेगा तेरे जीवन का तट ये॥

तेरा राजा, यह सुख की रानी तेरी,
रह सकेगा न तू, और निशानी तेरी।
जगती के कण-कण किन्तु पवन के स्वर में,
कोसेंगे कह कर कलुष-कहानी तेरी॥

पानी की पुकार

कातिक की पूनो बीत चली आया अगहन का मास मधुर ।
अधरों पर प्रकृति वधूटी के लहराया हिम का हास मधुर ।

सिहरित तन, सिंचित हरित वसन सुरभित खेतोंकी बाड़ी में ।
सज गई रँगीली शालि, सजी लहरीली धानी साड़ी में ।

मद भरे शीत की थाती से छाती समीर की सिहर उठी ।
पाकर समीर का सरस परस गति-नीति नीर की सिहर उठी ।

हीरक सी हिम ऋतु रानी के अंगों का गोरापन निखरा ।
मस्ती की मधुर तरंगों के रंगों का गोरापन निखरा ।

दिग्वसना धूल भरी धरती तन पर सुषमा हरिताभ लिये ।
फँस रही दृगों के कोरों में हँस रही दसगुना लाभ लिये ।

हल की नोकों से खिंची हुई रेखाओं की तस्वीर बनी ।
अंतर में जो थे भरे हुए, उन भावों की तस्वीर बनी ।

खोये से सोये बीजों के खुल कर अनेक अंकुर निकले ।
अरमान भरे थे जो मन में उनके परिणाम प्रचुर निकले ।

हमने उनको उस दिन देखा लघु पातों के मुँह खोल रहे ।
हम सुने, मौन स्वर में सहसा वे धीरे धीरे बोल रहे ।

"पानी दो, हम सब प्यासे हैं हम दूर देश के श्रान्त पथिक ।
अपने पथ पर चलने वाले बाधाओं से आक्रान्त पथिक ।

पानी दो, जल्दी पानी दो पानी की प्रबल पिपासा है ।
केवल पानी के लिये अभी प्राणों पर अटकी आशा है ।

पानी दो, पानी पी-पी कर दुनिया की भूख मिटानी है ।
दाना बनने के लिये हमें पाना आवश्यक पानी है ।

पानी की पावन बूँदों में सुख-साज हमारे घन बरसो।
हम अनगिन चातक प्यासे हैं तुम आज हमारे घन बरसो।

साँसों साँसों की गति सहसा बन गयी कहानी, पानी दो।
पानी दो, पानी देने में क्यों आनाकानी? पानी दो।

ओ मेरे राजा, पानी दो ओ मेरी रानी, पानी दो।
कानों, आँखों में अंतर में गूँजी यह बानी पानी दो।"

प्यासों, उन अनगिन प्यासों को पानी देने की ठान लिये।
मैं लौट पड़ा अपने घर को अपने उलझे अरमान लिये।

अवशेष भाग दिन का बीता, संध्या आयी, फिर रात हुई।
मधुमयी चाँदनी की सुषमा छवि से छायी, फिर रात हुई।

जग की अलसायी आँखों ने तंद्रा पायी, फिर रात हुई।
जाने, रस-बोरी सी लोरी किसने गायी, फिर रात हुई।

फिर रात हुई दुनिया सोयी मेरे नयनों में नींद न थी।
सो पाऊँगा, पल भर भी मैं, इसकी कोई उम्मीद न थी।

मेरे मन, और विचारों से 'पानी दो' की धुन आती थी।
प्राणों के तारों-तारों से 'पानी दो' की धुन आती थी।

जीवन के कूल-कगारों से 'पानी दो' की धुन आती थी।
अंतर-सरिता की धारों से 'पानी दो' की धुन आती थी।

मेरे थे दोनों पार वहाँ 'पानी दो' की धुन-धारा में।
मैं डूब गया लाचार वहाँ पानी दो की धुन धारा में।

शशि की बाहों में बँधी हुई सकुचाई, सहमी, खोई सी
थी सोच रही रजनी रानी, कुछ जागी सी, कुछ सोयी सी।

प्रहरों का जागा नील गगन प्रहरी सा झपकी लेता था।
अत्यन्त निकट, केवल तट पर निद्रा की नैया खेता था।

कुछ खुली, और कुछ मुँदी हुई झपकीली तारों की आँखें।
जागरण—नींद के मंत्रों से थीं कीली तारों की आँखें।

डाली—डाली पर वेलों की सुषमा रस वाली बिखर गयी।
प्राची के कलित कपोलों पर लज्जा की लाली बिखर गयी।

अलियों के कुंठित कंठ खुले कोमल कलियों के कान खुले।
खुल गये द्वार नव नीड़ों के विहगों के वन्दी गान खुले।

था टूट रहा धीरे धीरे घन घोर तिमिर का घेरा भी।
छा गया दृगों में, प्राणों में आ गया समीप सवेरा भी।

सर के समीप जाने कब का पानी से रीता बोदर था।
वह था गरीब शोषित परन्तु सर का ही सगा सहोदर था।

था एक छोर पर एक युवक दूसरे छोर पर बाला थी।
मन में मस्ती थी मौन मधुर नयनों में मादक हाला थी।

दोनों दोनों के सम्मुख थे दोनों में भरी जवानी थी।
वह अपने मन का राजा था, वह अपने मन की रानी थी।

अधरों पर थी मुस्कान तरल संकेत सरल मधु आँखों में।
उड़ने की धुन थी बँधी हुई कामना परी की पाँखों में।

हो रही मुखर सी भाव—भरे प्राणों की आकुल भाषा थी।
दोनों पर बरस रही जैसे दोनों की मधु अभिलाषा थी।

सागर-वन, दुर्गम शैल, शिखर पग—पग पर भरी तबाही है।
कैसे चल पाये प्यार—भरा मानव का दुर्बल राही है।

नयनों के नीले अंबर में चूनों का रूप छलकता था।
सागर, तो सागर भूधर से ऊपर को कूप छलकता था।

कुछ कमल संकुचित मौन मलिन कुछ कुमुद खिले खुशहाल हुए।
वह चली रश्मिका की धारा स्मिकता के गीले गाल हुए।

रसियाँ जुड़ीं, कर जुड़े, जुड़े मन और जुड़ीं उनकी आँखें।
अज्ञात देश की ओर उड़े मन, और उड़ी उनकी आँखें।

वह देश, कि जिसकी मंजिल में पथ की पहचान नहीं होती।
वह देश, कि जिसकी उजड़ी भी दुनिया वीरान नहीं होती।

ऊपर सावन की रिमझिम है भीतर कुछ ज्वाला जलती है।
वह देश, कि जिसकी क्रीड़ा में अन्तर की पीड़ा पलती है।

वह देश, कि जिसकी आँखों में कुछ सपने पाले जाते हैं।
वह देश, जहाँ अङ्गारों पर अर्मान सँभाले जाते हैं।

कमनीय चिरन्तन दूर अगम उस प्रेम—देश के बासी वे
दोनों, दोनो में लीन मिले दोनों के प्रेम पिपासी वे

साकार सरस अभि सिंचन से कमनीय प्यार का क्रम निखरा।
अन्तर-अन्तर का, प्राणों का पावन शारीरिक श्रम निखरा।

सुन्दर, सित हास—भरे हीरे सिन्दूर—थाल पर बिखर गये।
नभ—गंगा के चंचल जल-कन या उषा-गाल पर बिखर गये।

किंजल्क—जाल पर ओस, या कि वारद प्रवाल पर बिखर गये।
बिछ गये इन्दु पर तारे या श्रम-बिन्दु भाल पर बिखर गये।

कलकल छलछल की ध्वनि लेकर फिर तो जल-धार लगी बहने।
मन का मधु मान लगा बहने मन की मनुहार लगी बहने।

सुकुमार सलोनी प्यार-भरी वह मौन पुकार लगी बहने।
दोनों की जीत लगी बहने दोनो की हार लगी बहने!

पंछी

उफ्! कौन, कौन सी कैंची से पर कुतर गया!
आकाश छोड़ कर मैं धरती पर उतर गया।

आकाश, कि जिसमें नयी उड़ाने भरता था,
आकाश, जहाँ मस्ती की ताने भरता था,
सौ-सौ रंगों में रँगी हुई तूली से;
खामोशी के मन में अफसाने भरता था।

जो जादू बन कर फिरी हजारों लाखों पर,
तस्वीर, खिंची की खिंची रह गयी आँखों पर।
मैंने अतीत में गीत कभी गाये थे,
स्वर घूम रहे अब तलक हवा की पाँखों पर।

मद-भरे अरे! वे मधु के गाने भूल गये,
सपने भूले, अपने बेगाने भूल गये;
आँखों से ओझल आज हमारी मंजिल है,
पथ, पहले के जाने पहचाने भूल गये।

मैं खेल चुका सूरज से चाँद सितारों से,
आकाश नदी की लहर-लहर से धारों से,
जो मेल मिले, वे खेल सभी मैंने खेले,
अपनी जीतों से, और जगत की हारों से

मधुमयी उषा ने मुझे मनोरम राग दिया,
कोमल किरनों ने हँसी-खुशी में भाग दिया,
है याद मुझे, जब बाल विभा ने मुस्का कर
अनुराग भरे हाथों से स्वर्ण-सुहाग दिया।

जब लहरा कर चाँदनी मुझे नहलाती थी,
नीरवता निशि की बार बार बहलाती थी,
जब नंदन वन की वायु परी सी प्यार भरी,
धीरे-धीरे मेरा शरीर सहलाती थी।

जब, तनिक हवा से हिले हिंडोले बादल के,
हैं याद मुझे वे ढीले-ढोले बादल के,
है याद, कि जब प्यासी बाहों में बँधी हुई,
बिजली बाला ने बन्धन खोले बादल के।

बीते सपना सा आज युगों के बाद अभी,
परियों के पायल की रुनझुन है याद अभी,
आँखों का एक गुनाह, तड़पते अधरों की,
सौ-सौ साधों से सधी हुई फरियाद अभी।

वह सजा सुनहरा प्रात, कि संध्या सिन्दूरी,
वह रँगी रजत की रात चाँदनी कपूरी,
वे लोक-लोक आलोक दे रहे अभी मुझे,
मेरे भावों में सिमट गयी जिनकी दूरी।

फानूस चाँद का, मधुर बहारों की महफिल,
मधुमयी प्यार से भरी पुकारों की महफिल,
मैंने देखा है इन्हीं सिसकती आँखों से,
वह नील चँदोवा और सितारों की महफिल।

चुन-चुन कर कितने पारिजात के फूलों को,
मैंने पहनायी माल भावना-भूलों को।
उनके पराग, रस रंग राग से रँगे हुए,
उन दिशा देवियों के अभिराम दुकूलों को।

रह गया भटक कर कहीं भाव की भीड़ों में,
बह गया गीत की मधुर मूर्च्छना मीडों में,
मेरी थी दुनिया एक, कल्पना की दुनिया,
नीड़ों के बाहर, और निरंतर नीड़ों में।

अब तो अंतर में दाह, दृगों में पानी है,
आगत के आगे गत की कौन निशानी है,
प्राणों में पीड़ा और विकंपन स्मृतियों में,
बीते वैभव की केवल शेष कहानी है।

मैं देख रहा धरती को धुँधली राह नयी,
मैं देख रहा चलने वालों की चाह नयी,
सब साज नये, अन्दाज नये मैं देख रहा,
ये नये नये सब दृश्य नवीन, निगाह नयी।

कितना उमंग-उल्लास हृदय में भरती है,
अंतर में अभिनव केलि कला की करती है,
छा गयी छटा, गा गयी भावना राग-मयी
आकाश छुटा, आ गयी सामने धरती है

यह धरती है, शूलों का मिलते फूल जहाँ।
सौ सौ साधों से भरी प्यार की भूख जहाँ।
यह धरती है, उस दूर देश की धारा को,
बाहों में भरते भाव-भरे दो कूल जहाँ।

इस धरती पर चाँदनी उतर कर आती है,
कमनीय करों का सरस परस दे जाता है,
रंगीन रुपहले और सुनहले साजों से,
वह किरन-कुमारी अपना रूप सजाती है।

इस धरती पर सूरज सोना बरसाता है,
मद-भरा चाँद, चादी से इसे सजाता है,
टीका करती है उषा महावर शाम सदा,
धरती का धाता धन्य, अनन्य विधाता है,

नदियाँ किंकिणी समान मुकुर शोभा सर की,
गिरि की गुरुता है, और गहनता सागर की,
पल में लाती है खींच स्वयं नारायण को,
वह शक्ति और अनुरक्ति भरी नरता नर की।

जिसकी साँसों में सुरभि सदैव प्रसूनों की,
आ सकी न जिसकी छवि में संख्या ऊनों की,
जिसकी अलकों में अमा बँधी फिरती है,
अधरों की मधु मुस्कान चाँदनी पूनो की।

पग में जिसके पाताल छत्र आकाशों के,
जिसके अंतर में भाव भरे विश्वासों के,
यों चूम रहे हैं जहाँ सृजन के चरणों को,
अभिलषित अधर अनुरक्त निरन्तर नाशों के।

जिस पर चल चमर समीर चाव से ढार रहा,
सूरज जिसकी आरती सदैव उतार रहा,
तारों की आँखें खोल लाख अभिलाषा से,
यह धरती है, जिसकी छवि व्योम निहार रहा।

अलि का आवेदन कुसुमित कलि का मुस्काना।
पतझर का जाना, और मधुर मधु का आना,
सब में मुखरित है जीवन का संदेश नया,
चातक का रोना और मयूरी का गाना।

वल्लरियों की अनुराग-भरी सी बाड़ी में,
सुषमा फिरती फूली वन, कुञ्ज—पहाड़ी में।
मन बँध जाता किसका न देखते ही पल में
वह प्रकृति सलोनी की रितुवों की साड़ी में।

कुछ जादू मंन्तर हुआ, हुआ जैसे टोना।
कन-कन का जीवन नया, नया कोना-कोना,
धरती के रज का राज रात में चाँदी सा,
जाने, यह कैसी सुबह? कि बन जाता सोना।

इस धरती में है भरा तपस्या त्याग यहाँ,
इसमें जीवन का राग, विवेक—विराग यहाँ,
इस धरती के ही अतल सिन्धु के अन्तर में
ज्वालामुखियों की धधक रही है आग यहाँ।

जिसके गौरव की गूँज गगन—भेदी है।
निधि अपनी अमरों को जिसने दे दी है,
अर्मानों के अंकुर अनमोल उगा करते,
धरती क्या? यह तो वलिदानों की वेदी है।

सीता, सावित्री सतियों की गाथा धरती,
पत्नी—व्रत वाले पतियों की गाथा धरती,
जिनमें गौरव के गान भरे—उभरे, वैसे
ग्रन्थों की अनगिन प्रतियों की गाथा धरती।

मैं सोच रहा, अम्बर की ओर न जाऊँगा।
धरती पर धरती के ही गाने गाऊँगा।
कुछ मत वालों का स्वर्ग कहीं पर हो चाहे,
मैं सोच रहा, धरती को स्वर्ग बनाऊँगा।

समता के स्वर का सरगम यों लहरायेगा,
धरती से उठ कर अंबर तक छा जायेगा,
आयेगा, वह वह दिन शीघ्र यहाँ फिर आयेगा,
पंछी-पंछी जब डाल-डाल पर गायेगा।

हम सभी विहग, हम सब समान!
जग तरु पर जीवन एक नीड़, जिसमें बिहगों की भरी भीड़,
सबके स्वर के संधानों में बस एक मूर्च्छना, एक मीड़।
इन कोटि-कोटि कंठों से है, हो रहा मुखर बस एक गान।
हम सभी विहग, हम सब समान

हो एक लालसा लाखों में, समता, मन-उर में आखों में,
काया-काया में कान्ति, हृदय में शांति, शक्ति हो पाँखों में,
हो प्यार समूची संसृति का जीवन की ऊँची हो उड़ान।
हम सभी विहग, सम सब समान,

फैले क्यों भ्रम का भेद-भाव? पंछी-पंछी में क्या दुराव,
चल रही आयु के सागर में सबकी साँसों की एक नाव,
समझो तो सब पर फहर रहा बस एक जिन्दगी का निशान।
हम सभी विहग, हम सब समान।

दुख-सुख सम गति से सह लें हम, अपनी-अपनी सुन,कह लें हम,
हो जीत हार, पर, प्यार भरे, पल चार साथ तो रह लें हम
जाने कब किसकी मंजिल में कब साँझ, और कब हो विहान?
हम सभी विहग, हम सब समान

शान्ति का प्रतीक

उड़ा कबूतर नील गगन में !

दिव्य दूत सा, तपः पूत सा,
शान्ति विधायक जन-नायक के कलित करों से
कहने को संदेश अमरता का अमरों से
तम के पट पर श्वेत लोक सा,
समता का पावन प्रतीक सा,
किसी लक्ष्य पर, शर सटीक सा, सधा ठीक सा
उड़ा कबूतर नील गगन में।
बिजली जैसे चमकी घन में।

तिमिर-अंक में किरन-कोर सा, नई भोर सा।
यमुना के नीलम में नर्तित
गंगा की हीरक-हिलोर सा।
उत्थित उल्का की उठान वह ?
राकेट, स्पुटनिक, स्वर्ग-यान वह ?
प्राणों की पावन पुकार सा, नया ज्वार सा,
जोड़ रहा जो धरा-गगन को, रजत-तार सा
शक्ति-शान्ति मय, नई नीति, निर्भ्रान्ति क्रान्ति मय
उड़ा कबूतर नील गगन में।
सत, जैसे तामस के मन में।

जिनमें रण का रोष, दानवी दोष समाया,
और, नाश का गीत जिन्होंने अब तक गाया,
उन्हें, आत्म-संतोष दे रहा।
उन्हें, प्यार-पूरित करुणा का कोष दे रहा।
जन-जन का मन आश्वासन मय
भय "परमाणु" और "उद्जन" में
उड़ा कबूतर नील गगन में।

पंचशील के पंख, शान्ति की सरहदों से
बोल रहा, 'बगदाद-संधि" "सीटो"-"नाटो" से
"भूल-भ्रान्ति से भरे हिंसको, सावधान तुम !
रचो न अपने हाथों विप्लव के विधान तुम !
मिटे विश्व का द्वन्द, मनुजता का शृङ्गार सजाओ !
ममता-भरा गान समता का मुक्त-कंठ से गाओ !
आशा-पूर्ण प्रकाश भरो तुम।
नव युग में विश्वास भरो तुम !
आज स्वयं संहार, सृजन का साज सजे फिर।
गूँजे राग नवीन प्यार की वीन बजे फिर।
सपने हों साकार प्यार के अपनेपन में"
उड़ा कबूतर नील गगन में॥

ग्रहण

आज गगन में ग्रहण, ग्रहण में अंधकार की रात।
किन्तु, यह बड़ी पुरानी बात।

बड़ी पुरानी बात, चाँद को एक राहु, जो ग्रस लेता है।
अंधकार का साँप चाँदनी को भी जैसे डस लेता है।

कहते हैं कुछ राहु-चाँद में बटवारे का बैर रहा है।
युगों युगों का भाव अभी तक जन-सागर में तैर रहा है।

जाने, कैसे कसे हुए हैं गला ज्ञान का, भ्रम के फन्दे।
आसमान की बात, विकल हैं गमगुसार धरती के बन्दे।

यह धरती का ग्रहण, कि जिसको कितने वर्ष व्यतीत हो गये।
दूर न हो पाया अब तक भी, आगत अमित अतीत हो गये।

मानवता का चाँद दनुजता के जबड़ों में जकड़ गया है।
अंधकार का दंभ विश्व के ओर-छोर पर अकड़ गया है।

आज प्रलय का पर्व, समर के घोर सिन्धु के तट पर ही है।
मानव यों चीत्कार कर रहा दानव दुर्दम रट पर ही है।

जैसे—जन-समुदाय रक्त में स्नान करेगा।
अपनी संस्कृति और सभ्यता आँख मूँद कर दान करेगा।

वह "डालर का डोम" रक्त का दान माँगता है।
नये नये व्यवधान तड़पती जान माँगता है।

उसे चमन में खुले, खिले इन फूलों की मुस्कान न भाती।
मधु पराग की, रंग-राग की प्यार-भरी पहचान न भाती।

उसे न भाता मधु का वैभव, उसको तो पतझार चाहिये।
कहाँ, सृजन में क्या रस उसको, संसृति का संहार चाहिये।

अहंकार से भरी हुई है यह उसके भावों की भाषा।
एक एक स्वर आज बन रहा नर संहारों की परिभाषा।

महानाश के मलिन मोड़ पर यह हिंसा की होड़ चल रही।
क्रूर कशिश की कोशिश जैसे जन-पथ पर जी तोड़ चल रही।

लगता है, संसार प्यार का घोर घृणा में डूब जायगा।
दिशा-दिशा का छोर, और हर ओर घृणा में डूब जायगा।

किन्तु, हिमालय से अन्तर के अन्तर से कैसी एक पुकार आ रही
ताप-तप्त अभिशप्त धरा पर फिर गंगा की धार आ रही।

प्राची का प्राचीर चीर कर,
अंधकार गंभीर चीर कर,

भाव-भरी सी भोर, किरन की कोर आ रही।
बूँद-बूँद में महा सिन्धु की ममता-भरी हिलोर आ रही।

जन-जन के जीवन में जैसे जादू-भरी कला-कल्याणी।
कंठ-कंठ से गूँज रही है विश्व वंद्य बापू की वाणी।

पपीहा—

रे पपीहा, तू बने मत दीन!

यह रुदन का दिन रुदन की रात, साँझ रट की और रट का प्रात,
आसरे पर गैर के बरसात, मार ऐसी जिन्दगी पर लात!

हास जिसका आँसुओं में लीन।
रे पपीहा तू, बने मत दीन!

व्यर्थ गम खाये, पिये क्यों अश्रु, आग में दिल की जिये क्यों अश्रु?
क्यों किसी को चाहिये क्यों अश्रु, अश्रु क्यों, अपने लिये क्यों अश्रु?

अश्रु से क्यों जिन्दगी गमगीन।
रे पपीहा तू बने मत दीन!

नत नयन, ग्रीवा झुकी, न त भाल, जीवितों का है नहीं यह हाल।
देख मत अरमान, मान सम्हाल, जान चाहे मृत्यु को दे डाल।

हो पराश्रित किन्तु पानी पी न।
रे पपीहा तू बने मत दीन।

यह सही, तुझमें तृषा का ताप, किन्तु, पीने का नहीं यह माप।
कौन जाने, पुण्य क्या, क्या पाप, माँगना पर, है महा अभिशाप

शान से जी, यदि नहीं तो जी न।
रे पपीहा, तू बने मत दीन।

चाहता तू प्यार, किसका प्यार, तू समझता है जिसे सुखसार।
देख, उसकी पत्थरों की मार, बिजलियों की चमकती तलवार।

और तू कर्त्तव्य से हत-हीन
रे पपीहा, तू बने मत दीन।

उपेक्षिता

कितनी मोहक, कितनी मादक, कितनी हसीन।
मानव की चिर संगिनि, रस-रंगिनि वह मशीन
थी प्रगति शील, बन गयी किन्तु पर्दानशीन।

जीवन भर होकर यों उसके सिर पर सवार।
नारी को नर पद दलित कर रहा बार बार।

नर के हाथों में नियमों की निर्मम नकेल।
यों चला रही नारी को, जैसे ठेल—ठेल।

नारी के प्रति नर का यह ढोंग—ढंग,
जर्जर समाज के जीवन का जर्जरित अंग,
ऐसा प्रसंग, मन में मन की मारे उमंग,

पति से परित्यक्ता कोने में वह पड़ी दीन।
जैसे पानी से छुटा मीन,

टूटी फूटी सी विकृत वीन,
अवशेष अस्थि-पंजर जैसे बंजर जमीन।

वह सोच रही गत जीवन के वे खुले खेल
प्राणों के प्याले में मधुता का मधुर मेल।
जिस दिन यौवन की मदिरा दी उसने उँडेल।

कितनों के प्याले उठे, उठे रह गये रोज,
उस एक किरन से फूले फिर कितने सरोज।

जागा चिर सुषमा का सुहाग,
सावन की कजरी, फागुन का मद मस्त फाग।

यह निरी नियति का नियत चक्र,
चलता रहता है चपल चतुर्दिक सरल वक्र।

था किसे पता, कब गूँजेगा रस—हीन राग।
उपवन के जीवन में भर देगा जो विराग।

मैंने सोचा यदि एक बार।
मिल जाता मुझको उस प्रेयसि का प्रेम—प्यार।
मैं बलि जाता सौ बार, उसे इक टक निहार।

हो जाती सहसा सुगम सलोनी राह मुझे।
मंजिल तक पहुँचा देती मेरी चाह, मुझे।

साहस बटोर कर, जो बिखरे थे यत्र—तत्र।
मैं ने लिख भेजा उसे प्यार का एक पत्र।

रूपसि, तुझ से क्यों दूर प्रेम का परम तत्व?
उससे विहीन बोलो, क्या जीवन का महत्व?

वह फूल, फूल कैसा? जिसमें कुछ गन्ध न हो।
वह नदी नहीं, गति जीवन की निर्बन्ध न हो।

वह भाव कौन? अंतर्तम से अनुसंध न हो,
विश्वास व्यर्थ है, बधिर न हो यदि अंध न हो।

वह रूप कौन? जो अभिनव आकर्षण विहीन।
आगत के आगे विगत हुआ कब समासीन।

मोहकता से अनुरंजित जो मुस्कान नहीं।
पागलपन कर देने वाला किंचित गान नहीं।

जिन साँसों में कुछ नई जिन्दगी—जान नहीं,
वह जीवन क्या? जिसमें आदान प्रदान नहीं।

मैं तेरा सहचर, तू मेरी सहचरी बने।
मैं संकट—सागर तिरूँ तनिक तू तरी बने।

थिरकन भरती सी मूक प्यार की परी बने।
तरु की लतिका, मेरे मरु की निर्झरी बने।

तू गन्ध, और मैं तेरा रस—वाही समीर।
तू करुणा बन कर हरे हृदय की व्यथा—पीर।

तू मधु-फुहार सी फिरे तृषा के आँगन में।
तू अमृत-धार सी तिरे जिन्दगी के घन में।

तू ममता सी फैले फूले तन में, मन में।
तू चटक चाँदनी भरे चाँद के जीवन में।

तू ललक उठे, सखि, छलक उठे मधु-प्याली सी।
मधु मयी महक से लदी लचीली डाली सी।

तू अधरों की मोहक मुस्कान निराली सी।
तू आँखों की पुतली, कपोल की लाली सी।

सौ सौ साधों से सधा चाहता मन मेरा।
तेरे फूलों से सजे प्यार का वन मेरा।

मिल जाते जीवन के सौ सौ उपहार मुझे।
तू एक बार भी दे दे अपना प्यार मुझे।

× × ×

मैं ठगी गयी, फिर ठगने का ऐसा प्रयास।
मत भरो, रुदन के अधरों में मत भरो हास।

मत भरो हास पतझर के पीले पातों में।
राका की भूली याद अँधेरी रातों में।

दम रहा नहीं अब नये पुराने नातों में।
बोले अतीत क्यों वर्तमान की बातों में।

है याद मुझे बीता दिन, बीती हुई रात।
है याद मुझे मानव का वह विश्वासघात।

मानव, अपने को संसृति का शिरमौर कहे।
जितना चाहे, जो जी में आये, और कहे।

मानव, मनु की संतान, सृष्टि का स्वामी जो।
रह सका नहीं मानवता का अनुगामी जो।

वह सृजन छोड़ कर बना नाश का हामी जो।
ढो रहा निरंतर पशुता की बदनामी जो।

ऐसे मानव से कहाँ, विश्व कल्याण कहाँ ?
ऐसे मानव से मानवता का त्राण कहाँ ?

अलि ने किस कलि को जीवन भर कब दिया साथ ?
कब किसी नियम में बँधे स्वार्थ के सधे हाथ ?

कब नहीं घृणा से घिरा किसी का कहीं प्यार ?
कब सधी रह सकी प्राणों की पागल पुकार ?

कब संघर्षों से छूटी किसकी जीत-हार ?
किस उपवन में रह पायी है हर दम बहार ?

मैंने दुखी लाखों आँखों की तरल धार।
अधरों की मुस्कानों का जग धोती शृङ्गार।

दो साँसों के ताने में जीवन का बाना।
पल भर को आया रुदन, और पल भर गाना।

तो फिर कोई क्यों अनजाने से प्यार करे ?
क्यों रूठे कोई, क्यों कोई मनुहार करे ?

इस बुझे दीप की बाती को उकसाओ मत !
जो भूल गया है गान कभी का, गाओ मत !

इस उजड़ी सी दुनिया को आज बसाओ मत !
मैं दूर जा चुकी, दूर, सरकते आओ मत !

× × ×

यह दबी राख की चिनगारी क्यों रही जाग ?
बन गयी कहीं यदि आज दहकती हुई आग।

यह उभरे से मेरे विवेक मेरे विचार।
मिट जाँय न पाकर भावुकता की मधुर मार।

सोये अंतर को जगा रही कोई पुकार।
फिर झाँक रहा पहले का खोया हुआ प्यार।

क्यों आयी, छायी जीवन की बेखुदी आज ?
किसकी यह उँगली, उठी कौन गुदगुदी आज ?

अमराई से पिक और पपीहा की पुकार ।
बरसाती आती मादकता की मधुर धार ।
अलि के अंतर की आस कह रही, शर्मीली
कलि के कपाट की कसी-कसी साँकल ढीली ।

यह उत्सुकता की प्यास, नदी की बाँहों में !
गति में विकास, संकुचन दूर की राहों में ।

यह नये ज्वार उठ रहे सिन्धु की चाहों में ।
यह नयी-नयी नगरी बस रही निगाहों में ।

जाने, दोनो ने कौन भाव क्यों ठहराया ।
धरती कुछ ऊपर उठी, गगन नीचे आया ।

आकुल अभिलाषा भरी चाह की लाचारी ।
क्यों खींच रहा है चाँद चाँदनी की सारी !

तरु की पातों में, और लता-वल्लरियों में ।
सिहरन भर रही बयार प्यार की परियों में ।

यह दीपक का आँगन, परवानों की टोली ।
यह प्राणों का उपहार, प्यार की यह होली ।

यह मनुहारों की रात मधुरिमा में घोली !
जाने, क्यों मन की गाँठ आज किसने खोली ।

यह लुका छिपी बिजली की, बादल की बातें ।
यह राग-भरी सी आग-भरी सी बरसातें !

यह सूरज की टकटकी उषा का मुस्काना !
यह दो प्राणों की बुनन और ताना-बाना !

यह सुप्त चेतना का तन, और चिकोटी ये !
यह बहुत बड़ी सी बात, रात उफ् ! छोटी ये !

यह नयी-नयी सुनगुन भर गयी सितारों में ।
झन्कार कौन ? यह मौन वीन के तारों में ।

लहरों का उठना और तटों से टकराना ।
प्राणों में पागल प्यार, प्यार का अफसाना ।

मैं खिंची जा रही स्वयं, ढकेल रहा कोई ?
मेरे भावों से छुप कर खेल रहा कोई ।

कैसी मदिरा की धार उँडेल रहा कोई ।
जिसकी मस्ती के झोंके झेल रहा कोई ।

कोई, जो अपने उर में मुझे सँजोयेगा ।
जो साथ हँसेगा, और साथ ही रोयेगा ।

जिसके अंतर की मौन पुकार बनूँगी मैं।
वह रूठेगा, उसकी मनुहार बनूँगी मैं।

मलयानिल में मै मौन सुरभि सी खो जाऊँ।
अब उसे बना कर अपना, उसकी हो जाऊँ।

कितना सुख, कितनी शांति समान समर्पण में।
कोई आकृति, जैसे कि किसी के दर्पण में।

वह जीवन का कितना कमनीय समय होगा।
जब विश्व प्रेम की भव्य भावना मय होगा।

यह धरा नयी हो गयी, हुआ आकाश नया।
झकझोर रहा उर-अंतर को विश्वास नया।

यह नया-नया है, सृजन या कि है नाश नया।
मन के पक्षी के लिये बिछा यह पाश नया।

जो भी हो, पर, उस ओर मुझे चलना होगा।
उसके दुख-सुख की छाया में पलना होगा।

कुछ लाज-भरी, सिमटी, सहमी सकुचायी सी।
कुछ अपनी सी जैसे कुछ जँची परायी सी।

खो कर अपने जीवन का सारा रंग-रास।
वह आयी, मुरझायी लतिका जैसी उदास।

उसकी "हाँ" जैसे मिली, उसी "नाही" में।
हम दोनों तब बँध गये एक गलबाँही में॥

—:(❀):—

दो किनारे

चार आँखें, किन्तु अब तक भी निगाहें दूर !
रह गयीं फैली युगों से चार बाहें दूर।
छू न भी पातीं, दिलों से, आह ! आहें दूर।
दीखती मंजिल, मगर हैं दूर, राहें दूर !

लालसा में लीन, लिपि में लहरियों की लोल—
रख दिये हमने हजारों बार ये दिल खोल।
आह से कब तक चुके इन आँसुओं का मोल !
बोल ! कुछ तो बोल ! मेरे प्यार पागल बोल !

बाँध रक्खे हैं हमें निर्मम नियति का पाश।
एक पग भी चल सकेंगे, कौन इसकी आश ?
मौन धरती, और ऊपर मौन नीलाकाश।
बीच में फिर गूँजता क्यों मिलन का विश्वास।

ओस के आँसू, उषा की मधुमयी मुस्कान।
साँझ तम की, नव विभा का विभव स्वर्ण विहान।
चल रहा प्रतिपल बदलता प्रकृति का आख्यान।
हो न पाया किन्तु, अब तक विरह का अवसान।

फूल मन में, और आँखों में भरे हैं शूल।
सामने का स्वर्ण भी यों बन गया है धूल।
पास का आवास, हम तुम दूर के दो कूल।
प्राण, अब तो मधु मिलन की बात भी है भूल।

आज बन्दी मौन अंतर में सिसकता प्यार।
जिन्दगी की जीत भी यों बन रही है हार।
भिन्नता की एक रेखा सी खिंची जल-धार।
मैं यहाँ इस पार, प्रियतम ! तुम वहाँ उस पार।

प्रकृति-पुरी

प्रकृति-पुरी यह, जहाँ मनोरम फूलों की मुस्कान ।
और, कली की चल [illegible] के अलबेले तीर कमान ॥

गूँज रहे हैं जहाँ अलि के अनुनय पूरित गान ।
लता [illegible] के [illegible] रहे अरमान ॥

चाँदी से [illegible] जिसे रही है [illegible] ॥
आशा से [illegible], दूर—समीप ।
निशा [illegible] के जगमग—जगमग दीप ॥

मधु समीर की शहनाई पर [illegible] का संगान ।
जिसकी [illegible] की आस में [illegible] ॥

जिसके पात—पात के हिलने में कोई संकेत ।
और रमा बन कर बैठी है जिसकी रूखी रेत ॥

श[illegible]—सुबह के सजे हुए हैं [illegible] सिन्दूरी द्वार ।
अमल [illegible] के मोती, जिसके वैभव—वन्दनवार ॥

तरुओं—वल्लरियों की बाहों के विनिमय का खेल ।
प्राणों से, प्राणों का, मन से मन का मंजुल मेल ॥

जिसकी गुनना और पहलना [illegible] का सीमान्त ।
कुंज—कुंज वन—पुंज पहाड़ी जिसके पावन प्रान्त ॥

मन [illegible] सरस समर्पण, दर्पण सा वह ताल ।
जिसमें, सूरज, चाँद-सितारों के जादू का जाल ॥

नीलम की थाली में भर कर कुमकुम और गुलाल ।
कर देती है उषा, कि जिसका अभिनव आँगन लाल ॥

किरन-कुमारी, स्वर्ण धूलि से जिसकी सीमा घेर ।
अनहोने सोने का पानी जिसपर देती फेर ॥

जिसकी आँखें सुबह खोलती संध्या देती मूँद ।
मोती बन कर बिक जाती है जहाँ ओस की बूँद ॥

वैभव के रथ पर चढ़ कर जब आता है मधु मास ।
और बिखर जाता है उसका मधु मय मोहक हास ॥

फूल-फूल में कली-कली में रस की हेम-हिलोर ।
लय हो जाते जिसमें सहसा प्राण-प्राण के छोर ॥

रसवन्ती सी रंग रँगीली मस्ती भरी बयार ।
उठते हैं झनकार सदा के सोये, खोये तार ॥

किस लय में, किस स्वर में किशोर के जीवन का गान ।
क्या से क्या हो जाता है मन प्राणों का परिधान ॥

तरु—तरु की छाया बन जाती जैसे घनी चकोर ।
चाह चूमती शाम घूमती मस्त झूमती भोर ॥

यह नद—निर्झर मुखर, और यह कब से मौन पहाड़ ।
लम्बी जटा—जाल फैलाये यह खजूर, यह ताड़ ॥

एक विहग, जाने, किस पी को कब से रहा पुकार ।
यह पुकार ! युग बीत गये पर, कभी न टूटा तार ॥

मूक भावना मुखर हो रही यह कोयल की कूक ।
उसके स्वर में मेल मिलाती मेरे हिय की हूक ॥

जाने, किस के रंग मंच पर यह तितली चुपचाप
नाच रही है, मुक्त नाच, गति-लय में अपने आप ॥

फूलों में रँगरलियाँ वाली बुलबुल की यह बोल ।
किस रहस्य के अन्तर का पट देती सहसा खोल ॥

उषा और संध्या रानी का सिन्दूरी परिधान ।
श्वेत श्याम रँग में रँग देता अरे ! कौन मतिमान ?